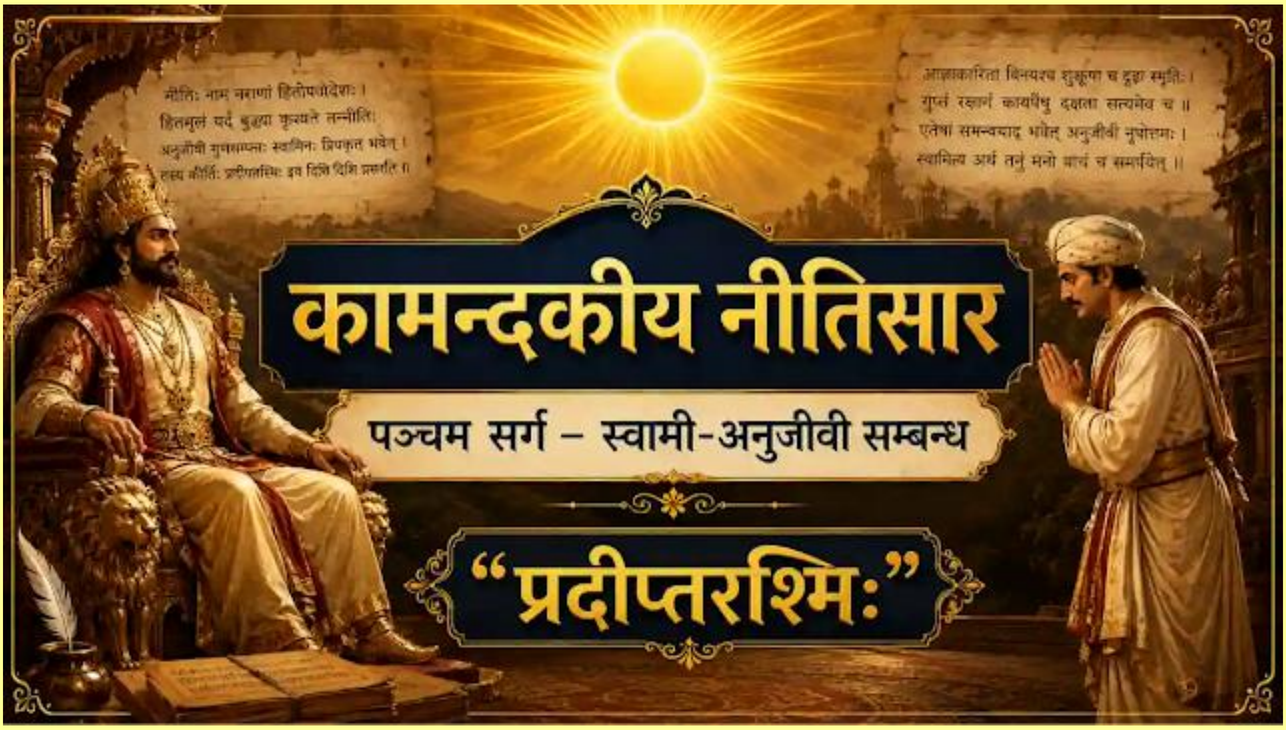
कामन्दकीय नीतिसार – सर्ग 5: स्वामी-अनुजीवी (राजा-सेवक संबंध)

(Kamandakiya Nītisara – Chapter 5: Swami–Anujeevi Relationship)



मूल ग्रंथकार (Original Author) : आचार्य कामन्दक (*Ācārya Kāmandaka*)

व्याख्या एवं प्रस्तुति (Commentary & Presentation) : *Indian Philosophy & Ethics*

लेखक / संपादक (Author / Editor) : *Anand Singh Dhami*

विषय क्षेत्र (Subject Area) : भारतीय राजनीति एवं नीतिशास्त्र, राजधर्म, राज्य-प्रशासन, दंडनीति, शासन-दर्शन, संस्कृत साहित्य, भारतीय दर्शन तथा नेतृत्व एवं प्रबंधन।

संक्षिप्त परिचय : *कामन्दकीय नीतिसार का यह पञ्चम सर्ग 'स्वाम्यनुजीविवृत्तप्रकरणम्' स्वामी (राजा) और अनुजीवी (मंत्री, अधिकारी, सेवक एवं आश्रित) के पारस्परिक संबंध, कर्तव्य, आचरण, सेवा-नीति तथा प्रशासनिक मर्यादाओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत ग्रंथ में प्रत्येक श्लोक का मूल पाठ, IAST लिप्यंतरण, शब्दार्थ, भावार्थ, दार्शनिक विवेचन तथा समकालीन परिप्रेक्ष्य में उसका विश्लेषण क्रमबद्ध रूप से दिया गया है। इसका उद्देश्य कामन्दक की नीतिचिन्ता को प्रामाणिक, सरल तथा शोधपरक रूप में प्रस्तुत करना है, जिससे विद्यार्थी, शोधार्थी, अध्यापक तथा भारतीय राजनीति, नीतिशास्त्र एवं दर्शन के अध्येता समान रूप से लाभान्वित हो सकें।*

ऑनलाइन लेख: *https://indianphilosophyethics.blogspot.com/2026/07/kamandakiya-nitisara-chapter-5-swami-anujeevi.html*

प्रस्तावना

कामन्दकीयनीतिसार के पञ्चम सर्ग **'स्वाम्यनुजीविवृत्तप्रकरणम्'** का ९२वाँ श्लोक इस सम्पूर्ण प्रकरण का **महानिष्कर्ष (Grand Finale)** तथा **फलश्रुति (Eulogy/Concluding Benediction)** है। इस सर्ग में लगभग ९२ से अधिक श्लोकों के माध्यम से स्वामी (राजा/शासक) तथा अनुजीवी (आश्रितों, मन्त्रियों एवं प्रजाजनों) के पारस्परिक आचरण, कर्तव्य-सीमाएँ, चरित्र-शुद्धि, सेवा-शिष्टाचार, कोष-संरक्षण, दण्डनीति तथा कर-व्यवस्था का अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यावहारिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस विस्तृत निरूपण के उपरान्त कामन्दकि अपने समस्त नीतिसिद्धान्तों का सार एक आदर्श राजा के छः प्रमुख गुणों (षड्गुण) के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत श्लोक में आदर्श शासक की **प्रजाहितैषिता, मधुरभाषिता, नीतिकौशल, कार्यदक्षता तथा सदा प्रसन्नचित्त रहने की प्रवृत्ति** का अत्यन्त सजीव एवं प्रभावशाली चित्रण किया गया है। कामन्दकि ने इस श्लोक को प्रकरण के अन्तिम स्थान पर इसलिए रखा है कि सम्पूर्ण राज्यव्यवस्था का परम उद्देश्य केवल शासन-संचालन या व्यवस्था-रक्षण नहीं, अपितु ऐसे सात्त्विक, न्यायप्रिय और लोकमंगलकारी शासक का निर्माण करना है, जिसकी **दीप्तिमयी कीर्ति (प्रदीप्तरश्मिः)** युगों-युगों तक लोकस्मृति में उज्ज्वल बनी रहे। इस प्रकार यह श्लोक पूर्ववर्ती ९१ श्लोकों में प्रतिपादित समस्त **विधि-निषेधों (क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए)** का संक्षिप्त, सारगर्भित एवं दार्शनिक उपसंहार प्रस्तुत करता है।

श्लोक (अनुजीवियों के लिए राजा-चयन के मानदंड)

श्लोक

दानार्थवृत्तिसम्पन्नाः कल्पवृक्षोपमं नृपम् ।
अभिगम्य गुणैर्युक्तं सेवेरन्ननुजीविनः ॥१॥

IAST

Dānārthavṛttisampannāḥ kalpavṛkṣopamaṃ nṛpam |
Abhigamya guṇairyuktaṃ severann anujīvinaḥ ||1||

शब्दार्थ
• **दानार्थवृत्तिसम्पन्नाः** – जिनकी आजीविका/कर्म-पद्धति परोपकार एवं लोकहित के उद्देश्य से युक्त है (जो स्वयं उदार एवं दानशील हैं)
• **कल्पवृक्षोपमम्** – कल्पवृक्ष (स्वर्गीय कल्पतरु) के समान
• **नृपम्** – राजा को
• **अभिगम्य** – उसके पास जाकर / उसकी शरण में आकर
• **गुणैर्युक्तम्** – उत्तम गुणों (न्याय, दया, सत्य, प्रजावत्सलता) से युक्त
• **सेवेरन्** – सेवा करें
• **अनुजीविनः** – अनुजीवी (आश्रित, मंत्री, सेवक एवं प्रशासक)

भावार्थ
कामन्दकि इस श्लोक में अनुजीवियों (राजाश्रितों, मंत्रियों एवं कर्मचारियों) को सेवा-धर्म का महत्त्वपूर्ण निर्देश देते हैं। वे कहते हैं कि जो अनुजीवी स्वयं **दानार्थवृत्तिसम्पन्न** हैं – अर्थात् जिनका अपना आचरण, व्यवसाय एवं जीवन-पद्धति केवल स्वार्थसिद्धि के लिए न होकर *दान* (परोपकार, समाज-सेवा, न्याय-वितरण) के उद्देश्य से प्रेरित है – उन्हें ही राजा की सेवा करने का अधिकार एवं कर्तव्य है। परन्तु यह सेवा किसी भी राजा की नहीं, अपितु उस राजा की होनी चाहिए

जो **कल्पवृक्षोपम** हो – अर्थात् जो अपनी प्रजा और अनुजीवियों की इच्छाओं की पूर्ति करने वाला, उदार और सर्व-कल्याणकारी हो, तथा **गुणैर्युक्त** हो – अर्थात् जो धर्म, न्याय, दया, बुद्धि और विनय आदि गुणों से सम्पन्न हो। ऐसे गुणी एवं कल्पवृक्ष-तुल्य राजा के पास जाकर (अभिगम्य) ही अनुजीवियों को उसकी सेवा में नियोजित होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि सेवा का आधार केवल वेतन, पद या आज्ञापालन नहीं, बल्कि **सेव्य (राजा) का चारित्र्य** और **सेवक की परोपकारी वृत्ति** – दोनों का परस्पर मेल ही सच्ची एवं सार्थक सेवा है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक प्राचीन भारतीय राजनीति में **'सेवा-दर्शन'** (Philosophy of Service) का अद्भुत उदाहरण है। **प्रथमतः,** *दानार्थवृत्ति* शब्द अत्यन्त गहन है – 'दान' केवल भौतिक वस्तु का दान नहीं, बल्कि **'त्याग'** एवं **'परहित'** का प्रतीक है। जब अनुजीवी अपनी वृत्ति को दान-अर्थ के लिए समर्पित करता है, तो वह *अहंकार* और *लोभ* से मुक्त हो जाता है। ऐसा सेवक राजा के पास आत्म-समर्पण नहीं, बल्कि **सहयोग-समर्पण** (collaborative surrender) के भाव से जाता है। **द्वितीयतः,** 'कल्पवृक्ष' का रूपक राजा की सर्वसत्तावादिता को नहीं, बल्कि उसकी **'दातृत्व-क्षमता'** को दर्शाता है। दार्शनिक रूप से, कल्पवृक्ष केवल तभी फल देता है जब भूमि (अर्थात् समाज/अनुजीवी) उपजाऊ हो – यहाँ अनुजीवी की दानशीलता ही वह उपजाऊ भूमि है। इस प्रकार यह श्लोक **पारस्परिक आश्रय-सिद्धान्त** (Principle of Mutual Interdependence) पर आधारित है। **तृतीयतः,** 'अभिगम्य' (पास जाकर) कर्मकाण्डीय निष्क्रियता को नकारता है; यह एक **सक्रिय, विवेकपूर्ण एवं चयनात्मक कर्तव्य** है, जो शुक्रनीति के "दुर्गुणी राजा की सेवा पाप है, सद्गुणी राजा की सेवा ही धर्म है" इस सिद्धान्त को प्रतिध्वनित करता है।

आधुनिक संदर्भ

ईसा पूर्व की इस नीति का प्रतिबिम्ब आज के लोकतान्त्रिक, कॉर्पोरेट एवं प्रशासनिक युग में अत्यन्त स्पष्ट एवं प्रासंगिक है। **१. सिविल सेवा एवं प्रशासन:** यह श्लोक आधुनिक सिविल सेवकों (IAS, IPS आदि) के लिए प्रेरणास्त्रोत है – 'दानार्थवृत्ति' का अर्थ है कि सरकारी अधिकारी का पद केवल वेतन और सत्ता का साधन नहीं, बल्कि जन-कल्याण (दान-अर्थ) हेतु समर्पित होना चाहिए। यदि स्वयं अधिकारी भ्रष्ट या स्वार्थी हैं, तो सरकार (राजा) की कोई भी कल्याणकारी योजना (कल्पवृक्ष) जमीन पर विफल हो जाती है। **२. कॉर्पोरेट सामाजिक दायित्व (CSR):** आज के व्यवसाय जगत में, कम्पनियाँ (अनुजीवी) अपनी आजीविका को केवल मुनाफे के लिए न रखकर, CSR, पर्यावरण-संरक्षण एवं सामुदायिक विकास (दानार्थ) में लगा रही हैं। वे तभी सफल होती हैं, जब वे ऐसी सरकारों/नियामकों (राजा) के साथ सहयोग करती हैं जो पारदर्शी एवं न्यायप्रिय (गुणैर्युक्त) हों। **३. नेतृत्व का चयन:** आम मतदाता (अनुजीवी) को यह सीख देता है कि वह केवल चुनावी लालच या जाति-धर्म के आधार पर नहीं, बल्कि उम्मीदवार की *योग्यता, कर्तव्यनिष्ठा एवं जनकल्याणकारी दृष्टिकोण* के आधार पर अपना प्रतिनिधि चुने। अतः **सच्ची सेवा वहीं सार्थक है, जहाँ सेवक का उद्देश्य परोपकार हो और सेव्य का आचरण सद्गुणी हो – यही सुशासन का शाश्वत मन्त्र है।**

श्लोक २ (गुणवत्ता का महत्व)

श्लोक

द्रव्यप्रकृतिहीनोऽपि सेव्यते सद्गुणान्वितः ।
भवत्याजीवनं तस्माच्छक्यं कालान्तरादपि ॥२॥

IAST

Dravyaprakṛtihīno'pi sevyate sadguṇānvitaḥ |
Bhavatyājīvanaṃ tasmācchakyaṃ kālānnarādapi ||2||

शब्दार्थ

- द्रव्यप्रकृतिहीनोऽपि – धन और कुल-गोत्र से हीन होने पर भी
- सेव्यते – सेवा/आश्रय प्राप्त होता है
- सद्गुणान्वितः – सद्गुणों से युक्त (व्यक्ति)
- भवति – हो जाती है
- आजीवनम् – आजीविका
- तस्मात् – इसलिए
- शक्यम् – संभव है
- कालात् – समय (यथाकाल) से
- नरात् – (सामान्य/नीच) मनुष्य से
- अपि – भी ।

भावार्थ

धन, कुल या उच्च जन्म से हीन व्यक्ति भी यदि सद्गुणों से युक्त है तो उसकी सेवा (आश्रय/नियुक्ति) की जाती है। अतः सद्गुणी व्यक्ति समयानुसार सामान्य मनुष्य से भी अपनी आजीविका प्राप्त कर सकता है। गुण ही मूल्यांकन का आधार है, जन्म नहीं।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक *गुण-प्रधानता* का सिद्धान्त प्रतिपादित करता है, जो जन्मगत वर्ण-व्यवस्था को खारिज करता है। यह भगवद्गीता के "गुणकर्मविभाग" सिद्धान्त से मेल खाता है – व्यक्ति की पहचान उसके कर्म और गुणों से होती है, कुल से नहीं।

आधुनिक संदर्भ

आज के कॉर्पोरेट जगत में 'मेरिटोक्रेसी' (योग्यतावाद) इसी का प्रतिबिम्ब है। नियुक्तियों में शिक्षा, अनुभव और चारित्र्य (सद्गुण) को प्राथमिकता दी जाती है। यह सिद्धान्त बताता है कि योग्यता और नैतिकता ही सफलता की कुंजी हैं, न कि पारिवारिक पृष्ठभूमि।

श्लोक ३ (विनय एवं आत्म-संयम)

श्लोक

अपि स्थाणुरिवास्तब्धो गुणपर्यायवान् शुचिः ।
न त्वेवानाससंपन्नो विमृशेत्परितः ॥३॥

IAST

Api sthāṇurivāstabdhō guṇaparyāyavān śuciḥ |
Na tvevānāsasaṃpanno vimṛśetparitaḥ ||3||

शब्दार्थ

- अपि – यद्यपि
- स्थाणुः – स्तम्भ/खम्भा (स्थिर)
- इव – समान
- अस्तब्धः – जो अहंकाररहित/विनीत है
- गुणपर्यायवान् – गुणों की श्रेणी से युक्त
- शुचिः – पवित्र/शुद्धचरित्र
- न तु – किन्तु नहीं
- एव – ही
- अनाससंपन्नः – आसन (सिंहासन/पद) से संपन्न / अभिमानी
- विमृशेत् – विचार करे
- परितः – चारों ओर / भलीभाँति ।

भावार्थ

यद्यपि कोई व्यक्ति खम्भे के समान स्थिर (अडिग) और विनीत हो, तथा गुणों की श्रेणी से युक्त एवं पवित्र हो, तो वह भलीभाँति विचार कर सकता है; किन्तु केवल पद-गौरव (आसन) से संपन्न अहंकारी व्यक्ति सम्यक् चिन्तन नहीं कर पाता। सच्ची बुद्धि विनम्रता में निहित है।

दार्शनिक विवेचन

यह सुकरात के 'ज्ञान का अहंकार' (Socratic ignorance) से मेल खाता है। योग-दर्शन के अनुसार 'अहंकार' (अस्मिता) ज्ञान का आवरण है। विनीत (अस्तब्ध) व्यक्ति ही निरपेक्ष सत्य को देख पाता है, जबकि पद-मद में चूर व्यक्ति का विवेक कुण्ठित हो जाता है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक प्रबंधन में 'सर्वेंट लीडरशिप' (सेवक नेतृत्व) इसी पर आधारित है – सच्चा नेता विनम्र होता है। केवल ओहदा या डिज़ाइनेशन (आसन) से नेता नहीं बनता, बल्कि उसकी चरित्र-शुद्धि और विनम्रता ही उसे प्रभावी बनाती है।

श्लोक ४ (आत्मज्ञान एवं परिणाम)

श्लोक

अनात्मज्ञानयद्वेषौ वैयर्थ्यततिसम्पदः ।
प्राप्यापि मददेयूर्ख्या सह तेन विपद्यते ॥४॥

IAST

Anātmajñānayadveṣau vaiyarthyatatisampadaḥ |
Prāpyāpi madadeyūrkhyā saha tena vipadyate ||4||

शब्दार्थ

- अनात्मज्ञान – आत्म-ज्ञान का अभाव
- यद्वेषौ – जिससे द्वेष/विरोध होता है
- वैयर्थ्यततिसम्पदः – व्यर्थ के प्रयासों की सम्पदा (वाला)

• प्राप्यापि – प्राप्त करके भी
• मददेयूर्ध्व – (जो) अहंकार से युक्त हो
• सह – उसके साथ
• तेन – उस (अनात्मज्ञानी) के द्वारा
• विपद्यते – विनष्ट हो जाता है ।

भावार्थ
जो आत्म-ज्ञान से रहित है, वह व्यर्थ के प्रयासों को ही अपनी सम्पदा मानता है। ऐसा व्यक्ति यदि पद या धन प्राप्त कर भी ले, तो अपने अहंकार के कारण वह उस पद के साथ ही नष्ट हो जाता है। आत्म-ज्ञान के बिना सफलता स्थायी नहीं होती।

दार्शनिक विवेचन

यह उपनिषदों के 'आत्मनो विद्वान् सर्वं विदितम्' सिद्धान्त को दर्शाता है। अज्ञानी का अहंकार (मद) उसके पतन का कारण बनता है, जैसा कि *मैत्रेयी-याज्ञवल्क्य* संवाद में वर्णित है – बिना आत्म-ज्ञान के सारी सम्पदा माया है।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'स्टार्ट-अप' और कॉर्पोरेट जगत में अहंकारी CEO (ईगो-लीडरशिप) कम्पनी को बर्बाद कर देते हैं। स्वयं को जानना (Self-awareness) आधुनिक मनोविज्ञान में भावनात्मक बुद्धिमत्ता (EQ) का मूल आधार है।

श्लोक ५ (योग्य मंत्री के लक्षण)

श्लोक

लब्धावकाशो निपुणः कालज्ञोऽविकारवान् ।
स्थाने स्थेय्यमुपारोति मतिकर्मसु निधिः ॥५॥

IAST

Labdhāvakāśo nipuṇaḥ kālajño'vikāravān |
Sthāne stheyamupāroti matikarmasu nidhiḥ ||5||

शब्दार्थ
• लब्धावकाशः – अवसर/स्थान प्राप्त किये हुए
• निपुणः – कुशल/दक्ष
• कालज्ञः – समय को जानने वाला
• अविकारवान् – विकार (क्रोध, लोभ आदि) से रहित
• स्थाने – उचित स्थान पर
• स्थेय्यम् – स्थिरता/धैर्य
• उपारोति – प्राप्त करता है
• मतिकर्मसु – बुद्धि और कार्यों में
• निधिः – (जो) भण्डार/खजाना (तुल्य) है ।

भावार्थ
जो व्यक्ति अवसर को पहचानता है, कुशल है, समय का ज्ञाता है, विकारों (क्रोध-लोभ) से रहित है, तथा बुद्धि और कर्म में स्थिर है – वही उचित स्थान पर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति राज्य/संगठन का 'रत्न' (निधि) होता है।

दार्शनिक विवेचन

यह योग-दर्शन के 'यम-नियम' (अविकारत्व) और सांख्य के 'सत्त्वगुण' की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है। 'कालज्ञत्व' (समय-विवेक) चाणक्य की 'काल-त्रय' (भूत, वर्तमान, भविष्य) की परख का गुण है, जो मंत्रीत्व का प्राण है।

आधुनिक संदर्भ

आज के बिजनेस एनालिटिक्स और स्ट्रैटेजिक मैनेजमेंट में 'टाइमिंग' और 'इमोशनल कंट्रोल' को ही 'कालज्ञता' और 'अविकारत्व' कहा जाता है। ये गुण एक प्रभावी प्रोजेक्ट मैनेजर की पहचान हैं।

श्लोक ६ (तात्कालिक अनुकूलता)

श्लोक

यथा तदात्वे च यत्स्यादास्वाद्यं पेषलम् ।
तदेव तस्य कुर्वीत न निकृष्टमाचरेत् ॥६॥

IAST

Yathā tadātve ca yatsyādāsvādyaṃ peṣalam |
Tadeva tasya kurvīta na nikṛṣṭamācaret ||6||

शब्दार्थ
• यथा – जैसे
• तदात्वे – उस समय (तात्कालिक स्थिति) में
• च – और
• यत् – जो
• स्यात् – हो
• आस्वाद्यम् – रुचिकर/स्वीकार्य
• पेषलम् – सरल/मधुर
• तदेव – वही
• तस्य – उस (प्रसंग) के लिए
• कुर्वीत – करे
• न – नहीं
• निकृष्टम् – हीन/बुरा
• आचरेत् – आचरण करे ।

भावार्थ
जो कार्य उस समय की परिस्थिति में स्वीकार्य, रुचिकर और सरल लगे, वही उस अवसर पर करना चाहिए; हीन या अनुपयुक्त कार्य कदापि न करें। समय और स्थान के अनुसार नीति बदलनी चाहिए।

दार्शनिक विवेचन

यह 'देश-काल-पात्र' (स्थिति-समय-पात्र) का विवेक है, जो अर्थशास्त्र का मूलमन्त्र है। यहाँ 'पेषलता' (सरलता/सहजता) का तात्पर्य 'प्रकृति के अनुकूल आचरण' से है, न कि स्वेच्छाचारिता से।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक प्रबंधन का 'सिचुएशनल लीडरशिप' (आकस्मिक नेतृत्व) इसी सिद्धान्त पर कार्य करता है। एक ही शैली सब जगह नहीं चलती; बाजार, टीम और समय के अनुसार रणनीति में लचीलापन आवश्यक है।

श्लोक ७ (आरम्भ के सूक्ष्म संकेत)

श्लोक

तिलारम्भकसन्दर्शादपि पुण्यानि चिरासताम् ।
रसान्मन्युस्तद्धः सर्वैः साधारणा गुणाः ॥७॥

IAST

Tilārambhakasandarśādapi puṇyāni cirāsatām |
Rasānmanyustaddhaḥ sarvaiḥ sādhāraṇā guṇāḥ ||7||

शब्दार्थ

- तिलारम्भक – तिल के आरम्भ (सूक्ष्म आरम्भ)
- सन्दर्शात् – दर्शन/संकेत से
- अपि – भी
- पुण्यानि – पुण्य/शुभ परिणाम
- चिरासताम् – दीर्घकाल तक रहने वाले
- रसात् – रस/सार से
- मन्युः – क्रोध/असंतोष
- तद्धः – (जो) विहीन है
- सर्वैः – सभी के द्वारा
- साधारणा – सामान्य/उभयनिष्ठ
- गुणाः – गुण हैं ।

भावार्थ

सूक्ष्म आरम्भ (जैसे तिल) के संकेत से भी दीर्घकालिक पुण्य-परिणाम प्राप्त होते हैं। जो व्यक्ति रस (विषय-आसक्ति) और मन्यु (क्रोध) से रहित है, उसके गुण सभी के लिए सामान्य (आदर्श) होते हैं। थोड़े से प्रयास भी बड़े बदलाव ला सकते हैं।

दार्शनिक विवेचन

'तिलारम्भक' का तात्पर्य *सूक्ष्म से स्थूल* (अभिधर्मकोश) की ओर है। यह बताता है कि महान परिणामों की जड़ सूक्ष्म होती है। वैशेषिक दर्शन का 'आरम्भ' सिद्धान्त भी इसी ओर इंगित करता है – प्रत्येक कर्म का बीज सूक्ष्म होता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'इन्क्रीमेंटल इनोवेशन' (क्रमिक नवाचार) का सिद्धान्त – छोटे-छोटे परिवर्तन (जैसे कि तिल) दीर्घकाल में बड़े परिणाम (पुण्यानि) देते हैं। यह स्टार्ट-अप कल्चर का 'लीन मेथडोलॉजी' से मेल खाता है।

श्लोक ८ (परिवेश के अनुकूल बनना)

श्लोक

अपां प्रवादे गाङ्गं वा समुद्रं प्राप्य तद्रसः ।
भवत्यपेयस्तद्विद्वानुद्धरेदमुभासकम् ॥८॥

IAST

Apāṃ pravāde gāṅgaṃ vā samudraṃ prāpya tadrasaḥ |
Bhavatyapeyastadvidvānuddharedamubhāsakam ||8||

शब्दार्थ

- अपाम् – जलों का
- प्रवादे – (यह) प्रसिद्ध है कि
- गाङ्गम् – गंगा का जल
- वा – अथवा
- समुद्रम् – समुद्र को
- प्राप्य – प्राप्त करके
- तद्रसः – वहाँ का रस/स्वाद (लवणता)
- भवति – हो जाता है
- अपेयः – पीने योग्य नहीं (खारा)
- तद्विद्वान् – उसे जानने वाला विद्वान्
- उद्धरेत् – उद्धार/निष्कर्ष निकाले
- अमुभासकम् – इस प्रकार के (अनुकूलन) से ।

भावार्थ

प्रसिद्ध है कि गंगाजल भी समुद्र में मिलकर खारा (अपेय) हो जाता है। इसी प्रकार विद्वान् व्यक्ति भी परिवेश के अनुसार अपना स्वभाव ढाल लेता है; उसे इस अनुकूलन-कला (अमुभासकम्) को समझना चाहिए। परिवेश के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

दार्शनिक विवेचन

यह *अनुकूलन-दर्शन* (Philosophy of Adaptation) है, जो उपनिषदों के 'यथार्थवाद' से जुड़ा है। गंगा की पवित्रता समुद्र में लवणता में बदल जाती है – यह द्वन्द्व (द्वैत) को स्वीकार करना सिखाता है। बुद्धिमान वही है जो वातावरण के साथ तालमेल बिठाए।

आधुनिक संदर्भ

यह 'कल्चरल एसिमिलेशन' और 'ऑर्गनाइजेशनल बिहेवियर' का प्राचीन सूत्र है। किसी नई कम्पनी या देश में जाने पर वहाँ की नियम-संस्कृति (लवणता) अपनानी ही पड़ती है। लचीला व्यक्ति ही टिकता है।

श्लोक ९ (शुद्ध जीवन-पद्धति)

श्लोक

क्षीणोपि हि मेधावी शुद्धं जीवनमाचरेत् ।
तेनेह श्रियमाप्नोति न लोकेभ्यः स हीयते ॥९॥

IAST

Kṣīṇopi hi medhāvī śuddhaṃ jīvanamācaret |
Teneha śriyamāpnoti na lokebhyaḥ sa hīyate ||9||

शब्दार्थ

- क्षीणोपि – क्षीण/दरिद्र होने पर भी
- हि – निश्चय ही
- मेधावी – बुद्धिमान
- शुद्धम् – शुद्ध/नीतिपूर्ण
- जीवनम् – जीवनशैली
- आचरेत् – आचरण करे
- तेन – उस (शुद्ध आचरण) से
- इह – इस लोक में
- श्रियम् – लक्ष्मी/समृद्धि
- आप्नोति – प्राप्त करता है
- न – नहीं
- लोकेभ्यः – लोगों (समाज) से
- सः – वह
- हीयते – गिरता/अपमानित होता है ।

भावार्थ

यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति आर्थिक रूप से क्षीण (दरिद्र) भी है, तो उसे शुद्ध (सात्विक एवं नैतिक) जीवन-पद्धति का आचरण करना चाहिए। इसी शुद्ध आचरण के कारण वह समृद्धि प्राप्त करता है और समाज में उसका पतन (अपमान) नहीं होता।

दार्शनिक विवेचन

यह *कर्मयोग* का व्यावहारिक रूप है – फल की चिंता किए बिना कर्तव्य-पालन (शुद्ध आचरण) ही सच्चा धन है। 'श्री' केवल धन नहीं, बल्कि प्रतिष्ठा एवं आत्म-संतोष है, जो शुद्धता से आता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'हसल कल्चर' में भी यह महत्वपूर्ण है – पैसे की कमी हो, तो भी नैतिकता (शुद्धता) न छोड़ें। ईमानदारी और पारदर्शिता दीर्घकालिक विश्वास और 'ब्रांड वैल्यू' का निर्माण करती है, जो कभी नष्ट नहीं होती।

श्लोक १० (आदर्श मंत्री/सचिव)

श्लोक

अभिनयं स्थिरं पुण्यं ख्यातं दीर्घाभिषेचितम् ।
सेवेत सचिवं विद्वान् श्रेयो विन्द्यभिवेयुर् ॥१०॥

IAST

Abhinayaṃ sthiraṃ puṇyaṃ khyātaṃ dīrghābhiṣecitam |
Seveta sacivaṃ vidvān śreyo vindyabhiveyur ||10||

शब्दार्थ
• अभिनयम् – (सच्चे) स्वभाव/आचरण को
• स्थिरम् – स्थिर (अडिग)
• पुण्यम् – पुण्यशाली
• ख्यातम् – ख्याति-प्राप्त
• दीर्घाभिषेचितम् – दीर्घकाल से अभिषिक्त (अनुभवी)
• सेवेत – सेवा करे
• सचिवम् – मंत्री/सचिव की
• विद्वान् – विद्वान् व्यक्ति
• श्रेयः – कल्याण/उत्कृष्टता
• विन्द्यात् – प्राप्त करे
• अभिवेयुः – (और) अभिवृद्धि करें ।

भावार्थ
विद्वान् शासक/व्यक्ति उस सचिव (मंत्री) की सेवा/सहायता ले, जो आचरण में स्थिर, पुण्यशाली, ख्याति-प्राप्त तथा दीर्घकाल से अनुभवी (अभिषिक्त) हो। ऐसे मंत्री के सहयोग से ही शासक कल्याण और उत्कर्ष (अभिवृद्धि) प्राप्त करता है।

दार्शनिक विवेचन

यह *सचिव-गुण* का सर्वांगीण चित्र है – यहाँ 'अभिनय' का अर्थ दिखावा नहीं, बल्कि 'स्वभाव' (अन्तःकरण) है, जैसा कि भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में 'सात्त्विक अभिनय' है। दीर्घाभिषेचित (अनुभवी) होना मंत्री का प्रमुख गुण है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कॉर्पोरेट बोर्ड में 'सी-सुइट' अधिकारियों (CEO, CFO) का चुनाव इसी मापदण्ड पर होता है – स्थिर आचरण (अभिनयं स्थिरं), ख्याति (क्रेडिबिलिटी), और दीर्घ अनुभव। विश्वसनीय सलाहकार (ट्रस्टेड एडवाइजर) ही संगठन को दीर्घकालिक सफलता देता है।

श्लोक ११ (प्रयत्न एवं सफलता)

श्लोक

दुरापमपि नैकस्मिन् यद्यदस्ति तदिच्छति ।
तदाप्नोति मेधावी तस्मात्कार्यः समुद्यमः ॥११॥

IAST

Durāpamapi naikasmin yadyadasti tadicchati |
Tadāpnoti medhāvī tasmātkāryaḥ samudyamaḥ ||11||

शब्दार्थ

- दुरापम् – जो कठिनता से प्राप्त हो
- अपि – भी
- नैकस्मिन् – एक (व्यक्ति) में / किसी एक में
- यत् यत् – जो-जो
- अस्ति – है
- तत् – वह
- इच्छति – चाहता है
- तत् – वह (इच्छित वस्तु)
- आप्नोति – प्राप्त कर लेता है
- मेधावी – बुद्धिमान व्यक्ति
- तस्मात् – इसलिए
- कार्यः – करना चाहिए
- समुद्यमः – उद्यम/प्रयत्न ।

भावार्थ

बुद्धिमान व्यक्ति उस वस्तु को भी प्राप्त कर लेता है, जो अत्यंत दुर्लभ है, यदि वह उसे चाहता है। इसलिए सदैव उद्यम (प्रयत्न) करना चाहिए। इच्छा एवं प्रयत्न का सम्मिलित बल ही दुर्लभतम लक्ष्य को भी सुलभ बना देता है।

दार्शनिक विवेचन

यह *पुरुषार्थ-वाद* (Human Effort) है, जो भाग्यवाद का खंडन करता है। गीता का 'योगः कर्मसु कौशलम्' यहाँ 'समुद्यम' (निरंतर प्रयत्न) के रूप में प्रकट होता है – मेधा (बुद्धि) और उद्यम (क्रिया) का संयोग ही सफलता का मूल है।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'ग्रोथ माइंडसेट' (Growth Mindset) का यह प्राचीन सूत्र है – कठिन से कठिन लक्ष्य (दुरापम्) भी निरंतर प्रयत्न (समुद्यम) से प्राप्त होता है। स्टार्ट-अप एवं इनोवेशन में यह 'पर्सिस्टेंस' (दृढ़ता) का मूल मन्त्र है।

श्लोक १२ (सेवक का आत्म-संवर्धन)

श्लोक

आरिराधयिषुः सम्यगनुजीवी महोन्नतिम् ।
विद्याविनयशिल्पाद्यैरात्मानमुपपादयेत् ॥१२॥

IAST

Ārirādhayiṣuḥ samyaganujīvī mahonnatim |
Vidyāvinayaśilpādyairātmānamupapādayet ||12||

शब्दार्थ

- आरिराधयिषुः – सेवा करने की इच्छा रखने वाला
- सम्यक् – भलीभाँति / उचित रूप से
- अनुजीवी – आश्रित/सेवक
- महोन्नतिम् – महान उन्नति (पद/प्रतिष्ठा)
- विद्या – शास्त्र-ज्ञान
- विनय – नम्रता
- शिल्प – कला/हुनर
- आद्यैः – इत्यादि से
- आत्मानम् – अपने को
- उपपादयेत् – सुसज्जित/युक्त करे ।

भावार्थ

जो अनुजीवी राजा/स्वामी की उचित सेवा करके महान उन्नति प्राप्त करना चाहता है, उसे सर्वप्रथम विद्या (शास्त्रज्ञान), विनय (नम्रता) एवं शिल्प (व्यावहारिक कला/दक्षता) से अपने आपको सुसज्जित करना चाहिए। बिना योग्यता के सेवा अधूरी है।

दार्शनिक विवेचन

यह *कर्म-पूजा* का सिद्धान्त है – 'विद्या' ज्ञान-पक्ष, 'विनय' चारित्र-पक्ष, 'शिल्प' कौशल-पक्ष। तीनों के समन्वय से ही व्यक्ति 'महोन्नति' (आध्यात्मिक एवं भौतिक उत्कर्ष) का अधिकारी बनता है, जैसा कि विदुर-नीति में वर्णित है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कैरियर-निर्माण में 'अपस्किलिंग' (नवीन कौशल), 'इमोशनल इंटेलिजेंस' (विनय/संयम) एवं 'डोमेन नॉलेज' (विद्या) – तीनों की आवश्यकता पर यह श्लोक बल देता है। कोई भी नौकरी/पद योग्यता के बिना स्थायी नहीं होता।

श्लोक १३ (उत्तम सेवक के गुण – १)

श्लोक

कुलविद्याश्रुताचार्यशीलविक्रमधैर्यवान् ।
पौरुषसत्त्वबलारोग्यस्थैर्योदयान्वितः ॥१३॥

IAST

Kulavidyāśrutācāryaśīlavikramadhairyavān |
Pauruṣasattvabalārogyasthairyodayānvitaḥ ||13||

शब्दार्थ

- कुल – उत्तम वंश/कुलीनता
- विद्या – शास्त्रज्ञान
- श्रुत – वेद/शास्त्र-श्रवण
- आचार्य – आचार्यों से प्राप्त अनुशासन
- शील – सदाचार
- विक्रम – पराक्रम
- धैर्य – धीरज
- वान् – जो युक्त है
- पौरुष – पुरुषार्थ/साहस
- सत्त्व – आन्तरिक बल/सात्विकता
- बल – शारीरिक एवं मानसिक शक्ति
- आरोग्य – स्वास्थ्य
- स्थैर्य – स्थिरता/अडिगता
- उदय – उत्कर्ष/समृद्धि
- अन्वितः – जो इनसे युक्त है ।

भावार्थ

उत्तम अनुजीवी वह है, जो कुलीनता, विद्या, श्रुत-ज्ञान, आचार्य-अनुशासन, सदाचार, पराक्रम, धैर्य, पौरुष, सत्त्वगुण, बल, आरोग्य, स्थिरता एवं उत्कर्ष – इन सब गुणों से संपन्न हो। ये तेरह गुण एक आदर्श सेवक/मंत्री की पहचान हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *गुण-समग्रता* (Holistic Virtues) है – बाह्य (कुल, बल, आरोग्य) एवं आन्तरिक (शील, धैर्य, सत्त्व) दोनों का समावेश। यह योग-दर्शन के 'यम-नियम' एवं 'शारीरिक-क्षमता' का सम्मिलित रूप है, जो अष्टांग योग के बाह्य एवं अन्तः साधनाओं से मेल खाता है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक HR चयन-प्रक्रिया में 'स्किल-सेट' (विद्या/शिल्प), 'फिटनेस' (आरोग्य/बल) एवं 'कल्चरल फिट' (शील/विनय) – सभी परीक्षण किए जाते हैं। यह श्लोक इन्हीं समग्र मापदण्डों (Holistic Assessment) को २००० वर्ष पूर्व स्पष्ट करता है।

श्लोक १४ (सेवक के निषेध-गुण)

श्लोक

पैशुन्यद्रोहसम्भेदशाठ्यानृतविवर्जितः ।
स्तम्भचापलदीनत्वं सेवनं कर्तुमर्हति ॥१४॥

IAST

Paiśunyadrohasambhedaśāṭhyānṛtavivarjitaḥ |
Stambhacāpaladīnatvaṃ sevanaṃ kartumarhati ||14||

शब्दार्थ

• पैशुन्य – चुगलखोरी/दूसरों की बुराई
• द्रोह – विश्वासघात/बैर
• सम्भेद – भेद-भाव/फूट डालना
• शाठ्य – कपट/धोखा
• अनृत – असत्य/झूठ
• विवर्जितः – जिसने इन्हें त्याग दिया है
• स्तम्भ – अहंकार/गर्व
• चापल – चपलता/अस्थिरता
• दीनत्व – दीनता/नीचता/लोभ
• सेवनम् – सेवा/आश्रय
• कर्तुम् – करने के लिए
• अर्हति – योग्य है ।

भावार्थ

जो अनुजीवी चुगलखोरी, विश्वासघात, फूट-डालने की बुद्धि, कपट, असत्य, अहंकार, चपलता और दीनता (नीच लोभ) – इन आठ दोषों से रहित है, वही सच्ची सेवा करने योग्य है। बिना इन दोषों के त्याग के सेवा व्यर्थ एवं हानिकारक है।

दार्शनिक विवेचनयह *आत्म-शुद्धि* का नकारात्मक पक्ष (Neti Neti) है – पतंजलि के 'क्लेश' (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) के समान, ये दोष मनुष्य को सेवा-योग्यता से वंचित करते हैं। स्तम्भ (अहंकार) सबसे बड़ा शत्रु है।

आधुनिक संदर्भ

कॉर्पोरेट जगत में ये 'पॉइज़न ट्रेट्स' (विषैले गुण) कहलाते हैं – टॉक्सिक बिहेवियर (चुगली, धोखा, अस्थिरता) किसी भी टीम को नष्ट कर देते हैं। आज की 'साइकोमेट्रिक टेस्टिंग' इन्हीं दोषों को पहचानने के लिए है।

श्लोक १५ (सेवक को शोभा देने वाले गुण)

श्लोक

दक्षता भद्रता दाक्ष्यं क्षान्तिः कार्यसहिष्णुता ।
सन्तोषः शीलमुत्साहो मण्डयत्यनुजीविनम् ॥१५॥

IAST

Dakṣatā bhadratā dākṣyaṃ kṣāntiḥ kāryasahiṣṇutā |
Santōṣaḥ śīlamutsāhō maṇḍayaty anujīvinam ||15||

शब्दार्थ

• दक्षता – चतुराई/कौशल

• भद्रता – सज्जनता/भलाई
• दाक्ष्यम् – निपुणता/कार्य-दक्षता
• क्षान्तिः – क्षमा/सहनशीलता
• कार्यसहिष्णुता – कार्य-भार सहने की क्षमता
• सन्तोषः – संतोष/धैर्य
• शीलम् – सदाचार/चरित्र
• उत्साहः – उमंग/परिश्रम
• मण्डयति – अलंकृत/सुशोभित करते हैं
• अनुजीविनम् – सेवक को ।

भावार्थ

कौशल (दक्षता), सज्जनता, निपुणता, सहनशीलता, कार्य-भार वहन करने की क्षमता, संतोष, सदाचार और उत्साह – ये आठ गुण एक अनुजीवी को प्राकृतिक आभा (मण्डन) प्रदान करते हैं। बाह्य आभूषण नहीं, ये आन्तरिक गुण ही उसकी शोभा हैं।

दार्शनिक विवेचन

'मण्डयति' शब्द विशेष महत्व रखता है – ये गुण आत्मा के 'अलंकार' हैं, जैसे सांख्य में 'सत्त्व' की प्रधानता होती है। उत्साह (तमस का अभाव), सन्तोष (राग का अभाव), क्षान्ति (द्वेष का अभाव) – ये त्रिगुण-संतुलन का व्यावहारिक रूप है।

आधुनिक संदर्भ

आज के परफॉर्मेंस-अप्रैसल में 'स्ट्रेस मैनेजमेंट' (कार्यसहिष्णुता), 'पॉजिटिव अटिट्यूड' (उत्साह/सन्तोष) और 'टीम-प्लेयर' (भद्रता/शील) को सबसे अधिक अंक दिए जाते हैं। ये सॉफ्ट-स्किल्स ही एक कर्मचारी को मूल्यवान बनाते हैं।

श्लोक १६ (राजा द्वारा सेवक-परीक्षा)

श्लोक

अर्थशास्त्रपरो नित्यं गुणैरेतैः समन्वितः ।
भूत्यै भूतिसम्पन्नं साधु विमृशयेन्नृपम् ॥१६॥

IAST

Arthaśāstraparo nityaṃ guṇairetaiḥ samanvitaḥ |
Bhūtyai bhūtisampannaṃ sādhu vimṛśayennṛpam ||16||

शब्दार्थ

• अर्थशास्त्रपरः – अर्थशास्त्र (नीति/शासन-विद्या) में निष्णात
• नित्यम् – सदा
• गुणैः – गुणों से
• एतैः – इन (पूर्वोक्त) से
• समन्वितः – युक्त
• भूत्यै – उन्नति/समृद्धि के लिए
• भूतिसम्पन्नम् – समृद्धि से युक्त

• साधु – भलीभाँति
• विमृशयेत् – विचार/परीक्षा करे
• नृपम् – राजा ।

भावार्थ
राजा को चाहिए कि वह अपनी उन्नति (भूति) के लिए उस अनुजीवी की भलीभाँति परीक्षा करे, जो सदा अर्थशास्त्र (राजनीति) में पारंगत हो तथा पूर्वोक्त गुणों (श्लोक १३-१५) से युक्त हो। केवल गुण-संग्रह ही नहीं, उनकी सत्यता की जाँच भी राजा का कर्तव्य है।

दार्शनिक विवेचन

यह *प्रमाण-शास्त्र* (Epistemology) का राजनीति-प्रयोग है – 'विमृशयेत्' अर्थात् संशय-निवारण हेतु तर्क एवं परीक्षण। कौटिल्य ने 'उपधा' (चार प्रकार की परीक्षा) का विधान किया, जिसका सारांश यह श्लोक है। 'अर्थशास्त्रपर' होना अभ्यास-पूर्वक ज्ञान है।

आधुनिक संदर्भ

आज की भर्ती-प्रक्रिया में 'बैकग्राउंड वेरिफिकेशन', 'टेक्निकल राउंड' (अर्थशास्त्र-पारंगतता) एवं 'बिहेवियरल राउंड' (गुण-परीक्षण) – तीनों स्तरों पर उम्मीदवार की परीक्षा की जाती है। 'विमृशयेत्' ही आधुनिक 'असेसमेंट सेंटर' है।

श्लोक १७ (सेवक का प्रवेश एवं यथाकाल-ज्ञान)

श्लोक

प्रविश्य सम्यग्रुचिते स्थाने तिष्ठन् स वेशवान् ।
यथाकालमुपाक्षीत राजानं विनयान्वितः ॥१७॥

IAST

Praviśya samyagrucite sthāne tiṣṭhan sa veśavān |
Yathākālamupākṣīta rājānaṃ vinayānvitaḥ ||17||

शब्दार्थ
• प्रविश्य – प्रवेश करके
• सम्यक् – उचित रूप से
• रुचिते – (जो) रुचिकर/उपयुक्त हो
• स्थाने – स्थान पर
• तिष्ठन् – खड़ा होकर
• सः – वह
• वेशवान् – उचित वेष/पोशाक धारण किए
• यथाकालम् – समयानुसार / उचित समय पर
• उपाक्षीत – प्रतीक्षा/समीप जाकर उपस्थित हो
• राजानम् – राजा के पास
• विनयान्वितः – विनम्रता से युक्त होकर ।

भावार्थ
सेवक को उचित स्थान पर प्रवेश करना चाहिए, उपयुक्त वेष (पोशाक) धारण करना चाहिए, विनम्र होकर खड़ा रहना चाहिए, और फिर समयानुसार (यथाकाल) राजा की सेवा/समीप उपस्थित होना चाहिए। स्थान, वेश, विनय और समय – ये चार सेवा-कला के अंग हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *काल-देश-पात्र-विवेक* (Time-Place-Occasion) का व्यावहारिक सूत्र है। विनय (हम्मीयता) आन्तरिक भाव है, वेश बाह्य संकेत, स्थान अनुशासन, और यथाकाल अवसर-चेतना – चारों का समन्वय ही 'सेवा-विधि' है, जैसा कि भरतमुनि के 'नाट्यविधान' में वर्णित है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कॉर्पोरेट एटिकेट में 'ड्रेस कोड' (वेश), 'पंक्चुअलिटी' (यथाकाल), 'प्रोफेशनल कंडक्ट' (स्थान एवं विनय) – सभी महत्वपूर्ण हैं। यह श्लोक बताता है कि किस प्रकार एक अधीनस्थ को अपने वरिष्ठ के समक्ष उपस्थित होना चाहिए – यह 'प्रोफेशनल एटिकेट' का प्राचीनतम स्रोत है।

श्लोक १८ (अहंकार एवं मत्सर-त्याग)

श्लोक

परेषामासनं वार्यमेकान्तं मत्सरं त्यजेत् ।
चिह्नैः कथयन्नेव न कुर्यादन्यथा सदा ॥१८॥

IAST

Pareṣāmāsanaṃ vāryamekāntaṃ matsaraṃ tyajet |
Cihnaiḥ kathayanneva na kuryādanyathā sadā ||18||

शब्दार्थ
- परेषाम् – दूसरों का
- आसनम् – स्थान/पीठ/सिंहासन
- वार्यम् – वर्जनीय/त्यागने योग्य
- एकान्तम् – एकांत/गोपनीयता (या रहस्य-भावना)
- मत्सरम् – ईर्ष्या/द्वेष
- त्यजेत् – त्याग दे
- चिह्नैः – संकेतों/इशारों से
- कथयन् – कहता हुआ / संकेत करता हुआ
- एव – ही
- न – नहीं
- कुर्यात् – करे
- अन्यथा – अन्य प्रकार / सीधे/प्रत्यक्ष
- सदा – सर्वदा ।

भावार्थ

सेवक को दूसरों के आसन (स्थान/सीट) पर बैठने से बचना चाहिए, एकांत-गोपनीयता एवं ईर्ष्या (मत्सर) का त्याग करना चाहिए। अपनी बात को वह सदा संकेतों/इशारों (चिह्नों) द्वारा ही कहे, प्रत्यक्ष एवं कर्कश रूप से कभी न कहे।

दार्शनिक विवेचन

'आसन' केवल सीट नहीं, प्रतीकात्मक रूप से *अधिकार-रेखा* (Boundaries) है – 'परेषामासन' अर्थात् दूसरे के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप न करना। 'चिह्नैः कथन' संवाद-कला (संकेतात्मक वार्तालाप) है, जो न्याय-शास्त्र के 'अभियोग-कला' से मेल खाता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में 'हायरार्की' (पद-क्रम), 'नो-गॉसिप पॉलिसी' (मत्सर-त्याग) एवं 'टैक्टफुल कम्युनिकेशन' (चिह्नैः कथन – डिप्लोमैटिक टोन) – इन्हीं सिद्धान्तों पर कार्य करते हैं। सीधी एवं कठोर बात (अन्यथा) अक्सर संबंध तोड़ देती है।

श्लोक १९ (दम्भ, माया, स्तेय का त्याग एवं विनय)

श्लोक

विप्रलम्भं च मायां च दम्भं स्तेयं च वर्जयेत् ।
पुरःस्थेभ्यः प्रणम्योर्ध्वं वल्लभेभ्यश्च भूपतेः ॥१९॥

IAST

Vipralambhaṃ ca māyāṃ ca dambhaṃ steyaṃ ca varjayet |
Puraḥsthebhyaḥ praṇamyordhvaṃ vallabhebhyaśca bhūpateḥ ||19||

शब्दार्थ

- विप्रलम्भम् – धोखा/छल
- च – और
- मायाम् – माया/कपट
- च – तथा
- दम्भम् – दम्भ/पाखंड
- स्तेयम् – चोरी/हरण
- च – भी
- वर्जयेत् – त्याग दे
- पुरःस्थेभ्यः – आगे खड़े (वरिष्ठ/प्रधान) व्यक्तियों को
- प्रणम्य – प्रणाम/नमस्कार करके
- ऊर्ध्वम् – (तत्पश्चात्) ऊपर/आगे (बढ़कर)
- वल्लभेभ्यः – राजा के प्रिय/विश्वस्तों को
- च – और
- भूपतेः – राजा के (सामने) ।

भावार्थ

सेवक को छल, माया (कपट), दम्भ (पाखंड) एवं स्तेय (चोरी) का सर्वथा त्याग करना चाहिए। उसे वरिष्ठ व्यक्तियों को

नमस्कार करके तथा राजा के विश्वस्त जनों (वल्लभों) का सम्मान करते हुए आगे बढ़ना चाहिए। विनम्रता एवं सम्मान-भाव सेवा का आधार है।

दार्शनिक विवेचन

चारों दोष – विप्रलम्भ, माया, दम्भ, स्तेय – 'रजोगुण' एवं 'तमोगुण' के परिणाम हैं। इनका त्याग 'सत्त्वगुण' की ओर अग्रसर है। 'प्रणम्य' कर्मकाण्ड नहीं, अपितु *गुरु-शिष्य* परंपरा एवं पद-अनुशासन को स्वीकार करने का मानसिक भाव है, जैसा आचार्य-शिष्य संवाद में दिखता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के पेशेवर जगत में भ्रष्टाचार (स्तेय), नकली प्रमाण-पत्र (दम्भ), धोखाधड़ी (विप्रलम्भ) एवं गेमिंग-द-सिस्टम (माया) – सभी अनैतिक एवं दण्डनीय हैं। इसके विपरीत, वरिष्ठों एवं प्रभावशाली सहयोगियों (वल्लभ) का सम्मान (नेटवर्किंग/रिलेशनशिप बिल्डिंग) सफलता के लिए आवश्यक है।

श्लोक २० (मंत्रियों के साथ गोपनीयता एवं सावधानी)

श्लोक

न राजसचिवैः सार्धं किञ्चिदप्यप्रियं वदेत् ।
ते हि मन्योरभिघ्नन्ति प्रहासेनापि संसदि ॥२०॥

IAST

Na rājasacivaiḥ sārdhaṃ kiñcidapyapriyaṃ vadet |
Te hi manyorabhighnanti prahāsenāpi saṃsadi ||20||

शब्दार्थ

- न – नहीं
- राजसचिवैः – राजा के मंत्रियों के साथ
- सार्धम् – साथ में
- किञ्चित् अपि – कुछ भी
- अप्रियम् – अप्रिय/अनुचित/गोपनीय
- वदेत् – कहे
- ते – वे (मंत्री)
- हि – निश्चय ही
- मन्योः – (किसी की) मान/अभिमान को
- अभिघ्नन्ति – आघात पहुँचाते हैं
- प्रहासेन अपि – हँसी-मज़ाक (मजाक) में भी
- संसदि – सभा/मण्डली में ।

भावार्थ

सेवक को राजा के मंत्रियों के साथ कभी भी कोई अप्रिय, अनुचित या गोपनीय बात नहीं कहनी चाहिए। क्योंकि वे मंत्री सभा में मज़ाक (प्रहास) के रूप में भी उस बात से व्यक्ति के अभिमान (मन्यु) को आघात पहुँचा सकते हैं। वचन-संयम एवं परिस्थिति-ज्ञान अत्यंत आवश्यक है।

दार्शनिक विवेचन

यह *वाक्-संयम* (Speech Restraint) का सिद्धान्त है – मौन एवं सावधानी को 'प्राज्ञता' (Prudence) कहा गया है। मंत्रिगण 'साक्षी' (Witness) होते हैं, अतः उनके समक्ष बोली गई कोई भी बात आधिकारिक रूप ले लेती है। यहाँ 'प्रहास' (हास्य) भी खतरनाक हो सकता है, जैसा कि 'वाक्-विवाद' के दोषों में मनुस्मृति में वर्णित है।

आधुनिक संदर्भ

आज की कॉर्पोरेट सभाओं (मीटिंग्स) में 'ऑफ-द-रिकॉर्ड' बातें भी खतरनाक होती हैं। सहकर्मियों (मंत्रियों) के समक्ष अप्रिय या व्यंग्यात्मक टिप्पणी (प्रहासेनापि) आपकी प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचा सकती है। यह श्लोक 'वर्कप्लेस पॉलिटिक्स' एवं 'प्रोफेशनल बाउंड्रीज़' का प्राचीनतम पाठ है।

श्लोक २१ (सेवक का आसन-अनुशासन एवं दृष्टि-संयम)

श्लोक

भर्तुरन्वासने तिष्ठन् दृष्टिं नान्यत्र विक्षिपेत् ।
कुर्यात् किमपि चास्येति तिष्ठेच्चाप्यं विलोकयन् ॥२१॥

IAST

Bharturanvāsane tiṣṭhan dṛṣṭiṃ nānyatra vikṣipet |
Kuryāt kimapi cāsyeti tiṣṭheccāpyaṃ vilokayan ||21||

शब्दार्थ

- भर्तुः – स्वामी/राजा
- अन्वासने – पीछे/समीप (स्थान)
- तिष्ठन् – खड़ा होकर
- दृष्टिम् – दृष्टि
- नान्यत्र – अन्यत्र नहीं
- विक्षिपेत् – फैलाए/भटकाए
- कुर्यात् – करे
- किमपि – कुछ भी
- च – तथा
- अस्य – इसका (स्वामी का)
- इति – इस प्रकार (मन में सोचकर)
- तिष्ठेत् – खड़ा रहे
- च – और
- आप्यम् – आज्ञा/कार्य
- विलोकयन् – (ताक) देखता हुआ/अपेक्षा करता हुआ ।

भावार्थ

सेवक को स्वामी के समीप खड़े होकर अपनी दृष्टि अन्यत्र नहीं भटकानी चाहिए। उसे मन में यह सोचकर खड़ा रहना चाहिए कि 'मैं स्वामी का क्या कार्य कर सकता हूँ?' तथा उसकी आज्ञा (आप्य) की प्रतीक्षा करते हुए सावधानीपूर्वक ताकता रहे। एकाग्रता एवं सजगता अनुजीवी के प्रथम धर्म हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *एकाग्रता-योग* (Concentration) का व्यावहारिक रूप है – जैसे ध्यान में चित्त को एक बिन्दु पर स्थिर किया जाता है, वैसे ही सेवक को स्वामी-सेवा में अपनी सम्पूर्ण चेतना (दृष्टि सहित) को केन्द्रित करना चाहिए। 'आप्यं विलोकयन्' – कर्म-प्रतीक्षा का भाव ही 'निष्काम कर्मयोग' का लक्षण है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में 'फोकस' एवं 'एटेन्टिवनेस' (Attention) को ही इस श्लोक में वर्णित किया गया है। किसी वरिष्ठ के समक्ष मीटिंग में मोबाइल या इधर-उधर देखना अनुचित माना जाता है। यह 'प्रोफेशनल डेकोरम' (व्यावसायिक शिष्टाचार) का मूल सूत्र है।

श्लोक २२ (सेवक के वर्जनीय आचरण)

श्लोक

उच्चैःप्रहसनं कासं वमनं कुत्सनं तथा ।
कम्पनं मात्रयालापं परुषं च विवर्जयेत् ॥२२॥

IAST

Uccaiḥprahāsanaṃ kāsaṃ vamanaṃ kutsanaṃ tathā |
Kampanaṃ mātrayālāpaṃ paruṣaṃ ca vivarjayet ||22||

शब्दार्थ

- उच्चैःप्रहसनम् – ऊँची आवाज़ में हँसना/ठहाका मारना
- कासम् – खाँसना
- वमनम् – उगलना/थूकना
- कुत्सनम् – बुराई/निन्दा करना
- तथा – तथा
- कम्पनम् – अंगों का हिलना/काँपना
- मात्रयालापम् – धीमी/अस्पष्ट/गुंजन-युक्त बात
- परुषम् – कर्कश/कठोर/अश्लील वचन
- विवर्जयेत् – त्याग दे (इन सबको) ।

भावार्थ

सेवक को ऊँचे स्वर में हँसना, खाँसना, थूकना, निन्दा-भाषण, अंग-हिलाना, अस्पष्ट बड़बड़ाना तथा कर्कश-कठोर वचन – इन आठों कुरीतियों का सर्वथा त्याग करना चाहिए। ये सभी आचरण सेवा-स्थल (दरबार) में अशोभनीय एवं अमर्यादित हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *शारीरिक एवं वाचिक संयम* (Physical and Verbal Restraint) का सिद्धान्त है। पतंजलि योग के 'शौच' (पवित्रता) एवं 'संतोष' का बाह्य रूप यहाँ दिखता है। 'उच्चैःप्रहसन' रजोगुण, 'परुष' तमोगुण का प्रतीक है – इनके त्याग से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, जो सेवक को संयत एवं गरिमामय बनाता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कॉर्पोरेट कल्चर में 'बॉडी लैंग्वेज' एवं 'वर्कप्लेस एटिकेट' इसी पर आधारित हैं – मीटिंग में ज़ोर से हँसना, लगातार खाँसना, या अशिष्ट भाषा (परुष) टीम-भावना को नष्ट करते हैं। ये 'प्रोफेशनलिज्म' के विपरीत माने जाते हैं।

श्लोक २३ (राजा का चित्त-ज्ञान एवं उचित वार्तालाप)

श्लोक

प्रविश्य सानुरागस्य चित्तं ज्ञात्वा यथासुखम् ।
समयं परमं प्राज्ञो भाषेत भाषितः ॥२३॥

IAST

Praviśya sānurāgasya cittaṃ jñātvā yathāsukham |
Samayaṃ paramaṃ prājño bhāṣeta bhāṣitaḥ ||23||

शब्दार्थ
• प्रविश्य – प्रवेश करके
• सानुरागस्य – अनुराग/प्रसन्नता से युक्त (राजा) के
• चित्तम् – मन/भाव
• ज्ञात्वा – जानकर/परखकर
• यथासुखम् – उचित रूप से/अनुकूलता से
• समयम् – अवसर/सन्दर्भ
• परमम् – उत्तम (अनुकूल)
• प्राज्ञः – विद्वान् सेवक
• भाषेत – बोले
• भाषितः – (स्वामी द्वारा) कहने पर / पूछे जाने पर ।

भावार्थ
विद्वान् सेवक राजा के समीप प्रवेश करके, उसके अनुराग-भाव (मनोदशा) को जानकर, तथा उचित अवसर (समय) का चयन करके ही बोले – वह भी तभी जब राजा स्वयं बातचीत आरम्भ करे (भाषितः)। मनोविज्ञान एवं काल-ज्ञान सेवा-संवाद के आधार हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *पर-चित्त-ज्ञान* (Empathy/Understanding others' mind) का सिद्धान्त है, जो 'अर्थशास्त्र' में 'मन्त्रिहृदय-ज्ञान' कहलाता है। 'प्राज्ञ' का अर्थ केवल पण्डित नहीं, बल्कि 'मनोवैज्ञानिक दृष्टि' से सम्पन्न व्यक्ति है। 'भाषितः' का तात्पर्य है कि बिना पूछे बोलना अशोभन है – यह मौन-शीलता (Mauna) का गुण है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक मैनेजमेंट में 'इमोशनल इंटेलिजेंस' (EQ) एवं 'टाइमिंग' (समय) – दोनों महत्वपूर्ण हैं। बॉस के मूड (चित्त) को समझे बिना कोई प्रस्ताव रखना नासमझी है। यह 'एक्टिव लिसनिंग' एवं 'राइट टाइमिंग' का प्राचीन सूत्र है।

श्लोक २४ (कर्मों का तत्त्व-ज्ञान एवं वृद्धों का सम्मान)

श्लोक

तत्त्वेन वा प्रयुञ्जीत कार्यं सुपरिनिश्चितम् ।
सुखं च वृद्धेषु विवादे वादिनां मतम् ॥२४॥

IAST

Tattvena vā prayuñjīta kāryaṃ supariniścitam |
Sukhaṃ ca vṛddheṣu vivāde vādināṃ matam ||24||

शब्दार्थ

- तत्त्वेन – तत्त्व/वास्तविकता/सत्यता से
- वा – अथवा (निश्चय ही)
- प्रयुञ्जीत – योजना/आरम्भ करे
- कार्यम् – कार्य
- सुपरिनिश्चितम् – सुनिश्चित/भलीभाँति परखा हुआ
- सुखम् – सुख/समृद्धि के समय
- च – तथा
- वृद्धेषु – वृद्धों/अनुभवियों (के बीच)
- विवादे – वाद-विवाद/शास्त्रार्थ में
- वादिनाम् – तर्क-वादियों/पक्षधरों का
- मतम् – मत/विचार (ग्रहण करे) ।

भावार्थ

सेवक को तत्त्व (वास्तविक ज्ञान) के आधार पर ही, भलीभाँति परखे हुए कार्य को आरम्भ करना चाहिए। सुख-समृद्धि के काल में वह वृद्धों का आदर करे, और किसी विवाद/शास्त्रार्थ में वादियों के विभिन्न मतों को ध्यानपूर्वक सुने एवं उनसे अच्छा-अंश ग्रहण करे।

दार्शनिक विवेचन

यह *ज्ञान-मीमांसा* (Epistemology) का व्यावहारिक नियम है – 'तत्त्वेन' का अर्थ है 'प्रमाण-निष्ठ' (Evidence-based)। 'वृद्धेषु' एवं 'वादिनां मतम्' का आदर करना संवाद-दर्शन (Dialogue) है, जो भारतीय शास्त्रार्थ-परंपरा (बौद्ध-जैन-वैदिक वाद-विवाद) का अनुसरण करता है। अहं नहीं, सत्य ही प्रमाण है।

आधुनिक संदर्भ

आज की 'डेटा-ड्रिवन डिसीज़न मेकिंग' (तत्त्वेन), 'बेंचमार्किंग' एवं 'ब्रेनस्टॉर्मिंग' (वादिनां मतम्) – इसी का आधुनिक रूप है। वरिष्ठों (वृद्ध) के अनुभव का सम्मान तथा टीम के विचारों को सुनना (वादिनां मतम्) एक अच्छे प्रोजेक्ट मैनेजर के गुण हैं।

श्लोक २५ (वाक्-संयम एवं मेधावी की चतुराई)

श्लोक

विजानन्नपि न ब्रूयात् क्षिप्रतरं वचः ।
प्रोक्तोऽपि हि मेधावी वञ्चयेदमिमानिताम् ॥२५॥

IAST

Vijānannapi na brūyāt kṣiprataraṃ vacaḥ |
Prokto'pi hi medhāvī vañcayedamimānitām ||25||

शब्दार्थ

- विजानन् – भलीभाँति जानता हुआ
- अपि – भी
- न – नहीं
- ब्रूयात् – बोले
- क्षिप्रतरम् – अति शीघ्रता से
- वचः – वचन/उत्तर
- प्रोक्तः – (स्वामी/वरिष्ठ द्वारा) कहने पर/पूछे जाने पर
- अपि – भी
- हि – निश्चय ही
- मेधावी – बुद्धिमान सेवक
- वञ्चयेत् – बचा ले/टाल दे
- अमिमानिताम् – अनुचित/अपमानजनक (स्थिति/प्रश्न) से ।

भावार्थ

बुद्धिमान सेवक यदि किसी विषय को अच्छी तरह जानता भी है, तो भी अत्यन्त शीघ्रता से उत्तर नहीं देता। चाहे वरिष्ठ उसे प्रोक्त (आदेश/प्रश्न) करें, तब भी वह चतुराई से अनुचित या अपमानजनक परिस्थिति को टाल (वञ्चयेत्) देता है। जल्दबाजी में दिया गया उत्तर अक्सर विनाशकारी होता है।

दार्शनिक विवेचन

यह *विवेक-प्रधानता* (Deliberation) का सिद्धान्त है – यहाँ 'वञ्चयेत्' का अर्थ छल नहीं, बल्कि 'कूटनीतिक मौन' (Strategic Silence) या 'उचित वाक्-संयम' है। सुकरात का विचार-मन्थन (Socratic Deliberation) भी यही सिखाता है – विचार-विमर्श किए बिना बोलना अज्ञानता है, चाहे आप जानते हों।

आधुनिक संदर्भ

आज की बिजनेस मीटिंग्स में 'थिंक बिफोर यू स्पीक' (क्षिप्रतरं न ब्रूयात्) – यही नियम है। जल्दबाजी में दी गई प्रतिक्रिया (React) बनाम विचारपूर्ण उत्तर (Respond) – यह 'इमोशनल इंटेलिजेंस' का प्रमुख अंग है। मेधावी व्यक्ति संघर्ष (अमिमानिता) को समझदारी से टालता है।

श्लोक २६ (आज्ञा-पालन एवं कर्म द्वारा विशिष्टता)

श्लोक

यदप्युक्तं विजानीयान्नीचैस्तदपि कुर्वीत ।
कर्मणा तस्य विशिष्टं कथयेद्विनयान्वितः ॥२६॥

IAST

Yadapyuktaṃ vijānīyānnīcaistadapi kurvīta |
Karmaṇā tasya viśiṣṭaṃ kathayedvinayānvitaḥ ||26||

शब्दार्थ

- यत् अपि – जो भी
- उक्तम् – कहा गया (स्वामी द्वारा)
- विजानीयात् – जाने (चाहे नीच/तुच्छ समझे)
- नीचैः – नीच/तुच्छ (प्रतीत होने पर भी)
- तदपि – वह भी
- कुर्वीत – करे
- कर्मणा – कर्म/कार्य-कुशलता के द्वारा
- तस्य – उस (स्वामी) को
- विशिष्टम् – विशेष/उत्कृष्टता/श्रेष्ठ ज्ञान
- कथयेत् – बताए/प्रकट करे
- विनयान्वितः – विनम्रतापूर्वक ।

भावार्थ

यदि स्वामी कुछ ऐसा कहें जो सेवक को नीच/तुच्छ लगे, तो भी उसे वह कार्य करना चाहिए। परन्तु अपनी **कर्म-कुशलता** (कार्य के उत्कृष्ट परिणाम) से वह विनम्रता सहित स्वामी को अपनी श्रेष्ठता/योग्यता (विशिष्टम्) का बोध करा दे। वचन से नहीं, कर्म से उत्तर देना चाहिए।

दार्शनिक विवेचन

यह *कर्मयोग* का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है – स्वामी की आज्ञा (चाहे वह बुद्धि-हीन लगे) का पालन करते हुए, उसे अपने कौशल से सही दिशा दिखाना। 'कर्मणा कथयेत्' – कर्म ही वाणी है। यह विधि-निष्ठता (Discipline) एवं नवाचार (Innovation) का अद्भुत समन्वय है, जैसा कि कृष्ण-अर्जुन संवाद में देखा जाता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के प्रबंधन में 'एक्ज़ीक्यूटिव ऑबीडिएंस' (आज्ञापालन) के साथ-साथ 'कंस्ट्रक्टिव फीडबैक' (कर्म द्वारा विशिष्टता दिखाना) महत्वपूर्ण है। यदि बॉस गलत निर्देश दे, तो उसे सीधे मना न करें, बल्कि उस कार्य को इतनी कुशलता से करें कि परिणाम स्वतः उन्हें सही रास्ता बताए – यही 'स्मार्ट वर्क' है।

श्लोक २७ (आपत्ति में कर्तव्य एवं हित-भाषण)

श्लोक

आपत्सु च प्रमदेषु कार्यकालात्ययेषु च ।
अपृष्टोऽपि हितं ब्रूयात्कल्याणभाषितम् ॥२७॥

IAST

Āpatsu ca pramadeṣu kāryakālātyayeṣu ca |
Apṛṣṭo'pi hitaṃ brūyātkalyāṇabhāṣitam ||27||

शब्दार्थ

- आपत्सु – संकट/आपत्ति में
- च – तथा
- प्रमदेषु – प्रमाद/भूल-चूक में
- कार्यकालात्ययेषु – कार्य एवं समय के अतिक्रमण (विलम्ब) पर
- च – और
- अपृष्टः – (स्वामी द्वारा) न पूछे जाने पर भी
- अपि – भी
- हितम् – हितकर/कल्याणकारी
- ब्रूयात् – कहे
- कल्याणभाषितम् – कल्याणकारी वचन (भाषितम्) ।

भावार्थ

सेवक को संकट-काल (आपत्), प्रमाद या भूल, तथा कार्य या समय के विलम्ब (अतिक्रम) के अवसर पर – चाहे स्वामी पूछे या न पूछे (अपृष्टः) – निश्चित रूप से हितकारी एवं कल्याण-प्रद वचन कहने चाहिए। विषम परिस्थिति में 'हित-वाक्य' ही सच्ची सेवा है।

दार्शनिक विवेचन

यह *आपत्कालीन धर्म* (Crisis Ethics) है – सामान्य अवस्था में 'भाषितः' (पूछने पर) बोलना था, परन्तु आपत्ति में 'अपृष्टः अपि' (न पूछे जाने पर भी) बोलना कर्तव्य है। यहाँ 'हित' (बेनिफिट) और 'कल्याण' (ऑस्पिशियसनेस) – दोनों आवश्यक हैं। यह चाणक्य के 'आपद्धर्म' से मेल खाता है – विपत्ति में मौन रहना पाप है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में 'व्हिसलब्लोअर' (Whistleblower) या 'संकट-प्रबंधक' (Crisis Manager) की यही भूमिका है – यदि कम्पनी संकट में है या कोई गलती हो रही है, तो चाहे बॉस न पूछे, फिर भी स्पष्ट एवं हितकारी सलाह (कल्याणभाषितम्) देना चाहिए। यही 'जिम्मेदार कर्मचारी' की पहचान है।

श्लोक २८ (चित्त-त्याग, पथ्य-भाषण एवं अप्रत्यक्ष-कटुता)

श्लोक

चित्तं त्यजेत् पथ्यमनात्मन्येव च ।
अब्रवीद्वा असत्यं वा परोक्षं कटु चेत्सृजेत् ॥२८॥

IAST

Cittaṃ tyajet pathyamanātmanyeva ca |
Abravīdvā asatyaṃ vā parokṣaṃ kaṭu cetsṛjet ||28||

शब्दार्थ

- चित्तम् – चित्त/संकल्प/दुष्ट-भावना
- त्यजेत् – त्याग दे
- पथ्यम् – हितकर/औषध-तुल्य वचन
- अनात्मनि – निज-स्वार्थ (आत्म) से रहित होकर
- एव – ही
- च – तथा
- अब्रवीत् – (जो) न कहा हो / (स्वामी ने जो न कहा हो)
- वा – अथवा
- असत्यम् – असत्य/झूठ
- वा – अथवा
- परोक्षम् – परोक्ष/अप्रत्यक्ष/चुगली युक्त
- कटु – कटु/कठोर
- चेत् – यदि
- सृजेत् – उत्पन्न करे / (तो उसे भी) त्याग दे ।

भावार्थ

सेवक को सबसे पहले चित्त की दुर्भावनाओं (ईर्ष्या, द्वेष) को त्याग देना चाहिए, तथा निज-स्वार्थ (अनात्मनि) को छोड़कर केवल हितकारी (पथ्य) वचन बोलना चाहिए। इसके अतिरिक्त, वह असत्य, अप्रत्यक्ष (परोक्ष/चुगली) तथा कटु-कठोर वचनों का उच्चारण न करे; यदि ये उत्पन्न हों तो उन्हें भी त्याग दे। सत्य, प्रत्यक्ष एवं मधुर वाणी ही श्रेष्ठ है।

दार्शनिक विवेचन

यह *सत्य-संवाद* (Truthful Communication) का सिद्धान्त है – 'अनात्मनि' अर्थात् अहं-रहित भाव। 'परोक्षं कटु' – परोक्ष (गुप्त/अप्रत्यक्ष) रूप से कटु-वचन कहना अर्थात् चुगली (पैशुन्य) से भी बचना चाहिए। यह वाक्-शुद्धि का अन्तिम सोपान है – जो पतंजलि के 'सत्य' एवं 'अस्तेय' का परिणाम है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यस्थलों पर 'ट्रांसपैरेंट कम्युनिकेशन' (पारदर्शी संवाद) और 'नो-गॉसिप पॉलिसी' (चुगली निषेध) यही सिखाती हैं। परोक्ष रूप से (जैसे ई-मेल CC/BCC में बुराई, या पीठ-पीछे आलोचना) करना अनैतिक है। सीधा, सत्य एवं रचनात्मक फीडबैक (पथ्यम्) ही आधुनिक प्रबंधन में मान्य है।

श्लोक २९ एवं ३० (पर-हित एवं स्व-हित का समन्वय – समापन)

श्लोक

परार्थद्वेषकालेषु दत्ते काले च साधयेत् ।
स्वां स्वार्थकुशलः कुर्यात्कुशलेनानुकारिणा ॥२९॥
IAST

Parārthadveṣakāleṣu datte kāle ca sādhayet |
Svāṃ svārthakuśalaḥ kuryātkuśalenānukāriṇā ||29||

शब्दार्थ
• परार्थ – दूसरों (स्वामी/प्रजा) के हित/अर्थ के लिए
• द्वेष – द्वेष/विरोध/संघर्ष
• कालेषु – समयों/स्थितियों में
• दत्ते – दिये गये (कार्य/आदेश) में
• काले – उचित समय पर
• च – तथा
• साधयेत् – सिद्ध/सम्पन्न करे
• स्वाम् – अपनी
• स्वार्थकुशलः – स्व-हित में कुशल (अपना लाभ समझने वाला)
• कुर्यात् – करे
• कुशलेन – कौशल/चतुरता से
• अनुकारिणा – (जो) स्वामी के अनुकूल/अनुसरण करता है (अर्थात् स्वामी की नीति का पालन करते हुए) ।

भावार्थ
जब स्वामी के हेतु (परार्थ) संघर्ष या विरोध (द्वेष) के कठिन समय हों, तब सेवक को दिये गये कार्य को उचित समय (काले) पर अवश्य सिद्ध करना चाहिए। साथ ही, वह अपने स्व-हित (स्वार्थ) में भी कुशल हो – अर्थात् वह ऐसी कुशलता (कौशल) से कर्म करे जो स्वामी की नीति का अनुसरण (अनुकारिणा) करते हुए उसके (सेवक के) निजी लाभ की भी रक्षा करे। **परहित और स्वहित – दोनों का समन्वय ही सिद्ध सेवा है।**

दार्शनिक विवेचन

यह *संकट-कालीन कर्मकौशल* (Crisis Management) तथा *स्वार्थ-परार्थ-सामंजस्य* (Balance of Self and Others) का अन्तिम एवं सर्वोच्च सिद्धान्त है। कामन्दकि यहाँ 'अनुकारिणा' (अनुसरण) और 'कुशलेन' (कौशल) – दोनों पर बल देते हैं – अर्थात् स्वामी की आज्ञा का पालन करते हुए भी सेवक को अपनी बुद्धि (कौशल) से ऐसा मार्ग निकालना चाहिए कि स्वयं भी सुरक्षित रहे। यह 'राजधर्म' का अन्तिम निष्कर्ष है – साम, दान, भेद, दण्ड के स्थान पर यहाँ 'कौशल' (Skill) को सर्वोपरि रखा गया है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कॉर्पोरेट जगत में 'नेगोशिएशन स्किल्स' (कुशलता) एवं 'एलाइनमेंट विद ऑर्गनाइजेशनल गोल्स' (अनुकारिणा) इसी का नाम है। एक अच्छा कर्मचारी वह है जो कम्पनी (स्वामी) के लक्ष्य को पूरा करते हुए अपने कैरियर (स्वार्थ) को भी संवारता है – यह 'विन-विन' (Win-Win) स्थिति है। कामन्दकि कहते हैं – केवल परार्थ (दूसरों के लिए) करने वाला या केवल स्वार्थी – दोनों असफल होते हैं; जो दोनों को कुशलता से साधता है, वही **आदर्श अनुजीवी** है।

श्लोक ३१ (राज-गोपनीयता एवं मनः-संयम)

श्लोक

गुह्यं मन्त्रं च भर्तुर्न सम्प्रकाशयेत् क्वचित् ।
विदेशिचिन्तां मनसापि न चिन्तयेत् ॥३१॥

IAST

Guhyaṃ mantraṃ ca bharturna samprakāśayet kvacit |
Videośicintāṃ manasāpi na cintayet ||31||

शब्दार्थ

- गुह्यम् – गोपनीय/रहस्य
- मन्त्रम् – मंत्रणा/गुप्त सलाह
- भर्तुः – स्वामी/राजा की
- न सम्प्रकाशयेत् – प्रकट न करे
- क्वचित् – कभी भी / कहीं भी
- विदेशिचिन्ताम् – विदेशी/शत्रु-पक्ष की चिन्ता/योजना
- मनसापि – मन में भी
- न चिन्तयेत् – न सोचे/चिन्तन न करे ।

भावार्थ

सेवक को राजा की गुप्त मंत्रणा (गुह्य-मन्त्र) कभी भी किसी के समक्ष प्रकट नहीं करनी चाहिए। इससे भी आगे बढ़कर, उसे शत्रु-पक्ष या विदेशी योजनाओं (विदेशिचिन्ता) का मन में भी चिन्तन नहीं करना चाहिए – क्योंकि मन का विचार ही वचन एवं कर्म का बीज है। गोपनीयता एवं चित्त-शुद्धि अनुजीवी के परम धर्म हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *मनस्-संयम* (Restraint of Mind) का सिद्धान्त है। केवल वचन ही नहीं, अपितु मन में भी अविश्वास या शत्रु-पक्ष की चिन्ता न करना – यहाँ 'मनसापि' शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह पतंजलि योग-दर्शन के 'वृत्ति-निरोध' से मेल खाता है – मन की अस्थिर वृत्तियाँ ही गोपनीयता को भंग करती हैं। सच्चा सेवक 'मन-मौन' का साधक होता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में 'गोपनीयता समझौता' (NDA) एवं 'बिज़नेस सीक्रेट्स' का उल्लंघन गम्भीर अपराध है। इस श्लोक की शिक्षा यह है कि कम्पनी के रणनीतिक रहस्यों (गुह्य-मन्त्र) को न केवल बाहर, बल्कि मन में उनकी आलोचनात्मक या विपक्षी योजना (विदेशिचिन्ता) नहीं करनी चाहिए – वफादारी का यही उच्चतम स्तर है।

श्लोक ३२ (अनुजीवी के वर्जनीय संग एवं स्थान)

श्लोक

स्त्रीभिर्व्याधिभिः पानैर्व्यायामैरध्वशोभनैः ।
एकान्तचैत्यशैलादौ संसर्गं विवर्जयेत् ॥३२॥

IAST

Strībhirvyādhibhiḥ pānairvyāyāmairadhvaśobhanaiḥ |
Ekāntacaityaśailādau saṃsargaṃ vivarjayet ||32||

शब्दार्थ

- स्त्रीभिः – स्त्रियों (अनुचित संग) से
- व्याधिभिः – रोगियों/रोग-ग्रस्त व्यक्तियों से
- पानैः – मदिरापान/नशीले पदार्थों से
- व्यायामैः – अत्यधिक व्यायाम/क्रीड़ा (समय-नाश) से
- अध्वशोभनैः – कष्टकर/दुर्गम/खतरनाक मार्गों से
- एकान्त – एकान्त स्थान
- चैत्य – देवालय/मन्दिर
- शैल – पर्वत/गुफा
- आदौ – इत्यादि (स्थानों) में
- संसर्गम् – संग/साथ रहना
- विवर्जयेत् – त्याग दे (बचे) ।

भावार्थ

सेवक को अनुचित स्त्री-संग, रोगियों का साथ, मद्यपान, अत्यधिक व्यायाम (जो समय एवं शक्ति नष्ट करे), दुर्गम मार्ग, तथा एकान्त वन, मन्दिर या पर्वतीय स्थानों में संग-साथ का सर्वथा त्याग करना चाहिए। ये सभी कार्य एवं स्थान सेवक की बुद्धि, आरोग्य एवं कर्तव्य-निष्ठा को हानि पहुँचाते हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *सत्संग-त्याग* (Avoidance of Tamasic/Rajasic company) का सिद्धान्त है। सांख्य-योग में 'रजोगुण' (स्त्री/पान/व्यायाम) एवं 'तमोगुण' (एकान्त/निष्क्रियता) को बन्धन के कारण माना गया है। 'चैत्य' (मन्दिर) एवं 'शैल' (गुफा) में एकान्त-वास भी खतरनाक है, क्योंकि वहाँ षड्यन्त्र का भय रहता है – यह चाणक्य की 'अर्थशास्त्र-नीति' है।

आधुनिक संदर्भ

आज कार्यालयीन जीवन में 'टॉक्सिक कल्चर' (अनुचित संग/स्त्री-उत्पीड़न), 'नशा-निषेध' (पान), एवं अत्यधिक 'वर्क-लाइफ इम्बैलेंस' (व्यायाम/अध्व) – सभी से बचना चाहिए। इसके साथ ही, रहस्यमयी/एकान्त स्थानों (जैसे कि ऑफिस के बाहर गुप्त बैठकें) में सहकर्मियों से मिलना संदिग्ध एवं हानिकारक हो सकता है।

श्लोक ३३ (वेष-भाषा की अनुकृति एवं स्पर्धा-त्याग)

श्लोक

वेषभाषानुकरणं न कुर्यात्पृथिवीपतेः ।
सम्पन्नोऽपि हि मेधावी स्पर्धेत न च तादृशैः ॥३३॥

IAST

Veṣabhāṣānukaraṇaṃ na kuryāt pṛthivīpateḥ |
Sampanno'pi hi medhāvī spardheta na ca tādṛśaiḥ ||33||

शब्दार्थ

- वेष – वेशभूषा/पोशाक
- भाषा – भाषा/बोली
- अनुकरणम् – नकल/अनुसरण
- न कुर्यात् – न करे
- पृथिवीपतेः – राजा की
- सम्पन्नः – गुण-सम्पन्न/धन-सम्पन्न
- अपि – होते हुए भी
- मेधावी – बुद्धिमान
- स्पर्धेत – स्पर्धा/प्रतिस्पर्धा करे
- न – नहीं
- च – तथा
- तादृशैः – उसके (राजा) जैसे व्यक्तियों से ।

भावार्थ

सेवक को कभी भी राजा की वेशभूषा या भाषा की नकल (अनुकरण) नहीं करनी चाहिए। चाहे वह स्वयं गुण-सम्पन्न एवं बुद्धिमान क्यों न हो, फिर भी उसे राजा या तत्समान वरिष्ठ पदाधिकारियों (तादृशैः) से किसी भी प्रकार की स्पर्धा नहीं करनी चाहिए। विनम्रता एवं पद-सीमा का ज्ञान ही अनुजीवी की शोभा है।

दार्शनिक विवेचन

यह *विनय-नीति* (Humility) का शिखर है – 'अनुकरण' न केवल बाह्य, बल्कि अहंकार का प्रतीक है। यह 'अभेद-भाव' (अहं-अस्मिता) के विरुद्ध है, जो योग-दर्शन में 'क्लेश' माना गया है। राजा के वेष-भाषा की नकल का अर्थ है उसके पद-गौरव को चुनौती देना; इससे मन में 'स्पर्धा' (ईर्ष्या/प्रतिस्पर्धा) उत्पन्न होती है, जो सेवक के पतन का मार्ग है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कार्यालयों में 'हायरार्की' (पद-क्रम) का सम्मान आवश्यक है – बॉस या सीईओ के कपड़े, अंदाज या भाषा-शैली की नकल करना अव्यवसायिक एवं अभद्र माना जाता है। इसी प्रकार, अधीनस्थ को अपने वरिष्ठ से कभी प्रतिस्पर्धा (स्पर्धा) नहीं करनी चाहिए; उसे अपनी योग्यता से काम दिखाना चाहिए, न कि मुकाबला करके।

श्लोक ३४ (राग-द्वेष-ज्ञान एवं हित-तत्त्व)

श्लोक

रागापरागौ जानीयाद्भावकुशलकर्मकृत् ।
हिताकारनिधानाभ्यां हिताकारतत्त्ववित् ॥३४॥

IAST

Rāgāparāgau jānīyādbhāvakuśalakarmakṛt |
Hitākāranidhānābhyāṃ hitākāratattvavit ||34||

शब्दार्थ

• राग – अनुराग/प्रेम/रुचि
• अपरागौ – विराग/अरुचि/घृणा (इन दोनों को)
• जानीयात् – (स्वामी की) जाने/परखे
• भावकुशलकर्मकृत् – भाव-कुशल (मनोवैज्ञानिक दृष्टि) एवं कर्म-कुशल
• हिताकार – हितकारी आकार/स्वरूप
• निधानाभ्याम् – निधान/भण्डार (संग्रह) के द्वारा
• हिताकारतत्त्ववित् – हित के स्वरूप का तत्त्व-ज्ञाता ।

भावार्थ

जो सेवक कर्म-कुशल एवं भाव-कुशल (मनोविज्ञान-दक्ष) है, उसे राजा की रुचि (राग) एवं अरुचि (अपराग) – इन दोनों को भलीभाँति जानना चाहिए, तथा हितकारी कार्य-स्वरूपों के संग्रह एवं उनके तत्त्व-ज्ञान के द्वारा राजा का हित साधना चाहिए।

दार्शनिक विवेचन

यह *मनोवैज्ञानिक विवेक* (Psychological Acumen) का सिद्धान्त है – 'रागापरागौ जानीयात्' अर्थात् 'दूसरे के मन की गति पहचानना'। यह अर्थशास्त्र के 'मन्त्रिहृदय-ज्ञान' (knowing the heart of the minister/king) का सूत्र है। 'हिताकारतत्त्व' का अर्थ है 'नैतिक हित' – केवल सुख नहीं, अपितु धर्म एवं न्याय पर आधारित हित।

आधुनिक संदर्भ

आज के प्रबंधन में 'स्टेकहोल्डर एनालिसिस' एवं 'पावर-मैपिंग' इसी का आधुनिक नाम है – वरिष्ठों की रुचि/अरुचि जानना (रागापराग) तथा उसके अनुसार कार्य-योजना बनाना। यह 'इमोशनल इंटेलिजेंस' (EQ) का उच्चतम स्तर है, जिसे 'नेतृत्व-हृदय-ज्ञान' कहा जा सकता है।

श्लोक ३५ (प्रसन्न-काल में सेवक का आचरण)

श्लोक

दृष्ट्वा प्रसन्नं भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात् ।
देशव्यसनमभ्यासं कुशलं परिपृच्छति ॥३५॥

IAST

Dṛṣṭvā prasannaṃ bhavati vākyaṃ gṛhṇāti cādarāt |
Deśavyasanamabhyāsaṃ kuśalaṃ paripṛcchati ||35||

शब्दार्थ

• दृष्ट्वा – (राजा को) देखकर
• प्रसन्नम् – प्रसन्न (होकर)
• भवति – रहता है/हो जाता है

- वाक्यम् – वचन/बात
- गृह्णाति – ग्रहण करता है
- आदरात् – आदर सहित
- देश – देश/राज्य की
- व्यसनम् – विपत्ति/संकट
- अभ्यासम् – अभ्यास/प्रथा/स्थिति
- कुशलम् – कुशल-क्षेम/भलाई
- परिपृच्छति – भलीभाँति पूछता है ।

भावार्थ

सेवक राजा को प्रसन्न देखकर स्वयं भी प्रसन्न रहता है, तथा आदरपूर्वक उसके वचनों को ग्रहण करता है। फिर वह राजा से देश-व्यवस्था, संकट-स्थितियाँ (व्यसन), वहाँ की प्रथाएँ (अभ्यास) एवं कुशल-क्षेम (समृद्धि-विषयक) – सबका सादर पूछताछ करता है। राजा के अच्छे मूड में ही ज्ञान-प्राप्ति एवं परामर्श उचित है।

दार्शनिक विवेचन

यह *काल-सन्दर्भ-ज्ञान* (Contextual Wisdom) है – राजा की प्रसन्नता (मनःस्थिति) ही वार्तालाप का आधार है। 'परिपृच्छति' (भलीभाँति पूछना) विद्यार्थी-शिष्य का भाव है – जिज्ञासा एवं चिन्तन का सूचक। यह 'सेवा' को 'सत्संग' में परिवर्तित करता है – जहाँ सेवक राजा का विश्वास-पात्र बनकर राज्य-स्थिति का ज्ञाता होता है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक प्रबंधन में 'वन-ऑन-वन मीटिंग' या 'टाउन हॉल' में बॉस के अच्छे मूड का लाभ उठाकर, कम्पनी के प्रदर्शन, बाजार-संकट (देशव्यसन) एवं नवीन रणनीतियों (कुशल) के बारे में प्रश्न पूछना बुद्धिमानी है। इससे वरिष्ठों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और जानकारी भी बढ़ती है।

श्लोक ३६ (एकान्त, रहस्य एवं सूचना-प्रेषण)

श्लोक

विविक्तद्विष्टस्थाने रहस्ये च न संवसेत् ।
तदर्थं तत्कृतं चान्यैराख्याति सद्बुधाम् ॥३६॥

IAST

Viviktadviṣṭasthāne rahastye ca na saṃvaset |
Tadarthaṃ tatkṛtaṃ cānyairākhyāti sadbudhām ||36||

शब्दार्थ

- विविक्त – एकान्त/अलग
- द्विष्ट – (जो) द्वेष/घृणा उत्पन्न करने वाला
- स्थाने – स्थान में
- रहस्ये – गुप्त/रहस्यमय स्थान में
- न संवसेत् – न रहे/निवास न करे
- तदर्थम् – उस (गोपनीयता/रहस्य) के प्रयोजन से

• तत्कृतम् – उस (राजा) द्वारा किया गया कार्य
• च – तथा
• अन्यैः – दूसरों के द्वारा (किया गया)
• आख्याति – बताता है
• सद्बुधाम् – सद्बुद्धि (राजा/अधिकारी) को ।

भावार्थ
सेवक को एकान्त, द्वेष-युक्त अथवा रहस्यमय स्थानों में नहीं रहना चाहिए (निवास नहीं करना चाहिए)। इसके अतिरिक्त, उसे राजा के गुप्त कार्य (तत्कृतम्) एवं दूसरों (मंत्रियों/अधिकारियों) द्वारा किये गये कार्यों की सूचना सद्बुद्धि राजा को अवश्य देनी चाहिए। स्वच्छता, पारदर्शिता एवं सतर्कता अनुजीवी के प्रमुख गुण हैं।

दार्शनिक विवेचन

'विविक्तद्विष्टस्थान' – एकान्त स्थान षड्यन्त्र (Conspiracy) का केन्द्र होते हैं, अतः सेवक को ऐसे स्थानों से दूर रहना चाहिए। साथ ही, 'सद्बुधाम् आख्याति' – यहाँ 'सूचना-कर्तव्य' (Duty to inform) को रेखांकित किया गया है, जो चाणक्य-नीति का अंग है। यह 'निन्दा' नहीं, बल्कि 'राज-हित' के लिए प्रामाणिक सूचना है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में 'रहस्यमय बैठकें' (जो कैमरे से छुपी हों) अक्सर अनैतिक गतिविधियों का केन्द्र बनती हैं – एक पेशेवर को ऐसी जगहों पर जाने से बचना चाहिए। इसके अलावा, कम्पनी के भीतर होने वाली अनियमितताओं (अन्यैः कृतम्) की सूचना नैतिकता एवं पारदर्शिता (सद्बुधाम्) हेतु समय पर देना चाहिए – यह 'व्हिसलब्लोइंग' का प्राचीन रूप है।

श्लोक ३७ (श्रोतव्य-वचन, आदर एवं गुण-कीर्तन)

श्लोक

श्रावयेद्येषु श्रोतव्यं गृह्यमाणो न नन्दति ।
कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टः कीर्तयेद्गुणान् ॥३७॥

IAST

Śrāvayed yeṣu śrotavyaṃ gṛhyamāṇo na nandati |
Kathāntareṣu smarati prahṛṣṭaḥ kīrtayed guṇān ||37||

शब्दार्थ
• श्रावयेत् – सुनाए/बताए
• येषु – जिन (योग्य/श्रोता) लोगों में
• श्रोतव्यम् – सुनने योग्य/उचित बात
• गृह्यमाणः – (स्वामी द्वारा) ग्रहण/स्वीकार किया जाता हुआ
• न नन्दति – अत्यधिक नाचे (न अहंकार करे)
• कथान्तरेषु – बीच-बीच की बातचीत में / अन्य प्रसंगों में

• स्मरति – स्मरण करता है
• प्रहृष्टः – प्रसन्न होकर
• कीर्तयेत् – कीर्तन/स्तुति करे
• गुणान् – (स्वामी के) गुणों की ।

भावार्थ
सेवक को उन्हीं योग्य व्यक्तियों (येषु) के समक्ष ही श्रोतव्य (सुनने योग्य एवं हितकारी) बातें कहनी चाहिए। जब स्वामी उसकी बात ग्रहण करता है, तो उसे अहंकार नहीं करना चाहिए (न नन्दति)। वह बातचीत के बीच-बीच (कथान्तरेषु) प्रसन्नतापूर्वक स्वामी के गुणों का स्मरण एवं कीर्तन (प्रशंसा) करता रहे।

दार्शनिक विवेचन

यह *संवाद-शीलता* (Art of Conversation) का सिद्धान्त है – केवल 'योग्य श्रोता' (येषु) के सामने ही वचन कहे, न कि हर किसी के सामने। 'गृह्यमाणो न नन्दति' अर्थात् 'स्वामी की स्वीकृति मिलने पर गर्व न करे' – यह कर्मयोग का 'अहं-त्याग' है। 'कथान्तरेषु' में गुण-कीर्तन करना सेवक की सहज-सेवा-प्रवृत्ति है, न कि चापलूसी।

आधुनिक संदर्भ

आज की बिजनेस मीटिंग में 'एक्टिव लिसनिंग' एवं 'टाइमली स्पीकिंग' – अर्थात् उचित श्रोता एवं अवसर पर बोलना महत्वपूर्ण है। अपनी बात माने जाने पर अहंकार (नन्दति) टीम-भावना को नष्ट करता है। इसके विपरीत, अच्छे कर्मचारी अपने बॉस/टीम-लीडर (स्वामी) के गुणों एवं सफलताओं (गुण-कीर्तन) को बातचीत में सराहते हैं – यह 'पॉजिटिव रीन्फोर्समेंट' है।

श्लोक ३८ (हित-वचन-सहिष्णुता, अनिन्दा एवं कर्तव्य-प्राथमिकता)

श्लोक

सहते पथ्यमप्युक्तं न निन्दामनुमन्यते ।
करोति प्रातरेवायं कार्यमित्येव मन्यते ॥३८॥

IAST

Sahate pathyamapyuktaṃ na nindāmanumanyate |
Karoti prātarevāyaṃ kāryamityeva manyate ||38||

शब्दार्थ
• सहते – सहन करता है
• पथ्यम् – हितकारी/औषध-तुल्य (वचन)
• अपि – भी
• उक्तम् – (जो) कठोरता से कहा गया हो
• न – नहीं
• निन्दाम् – निन्दा/आलोचना

• अनुमन्यते – अनुमति देता है/स्वीकार करता है
• करोति – करता है
• प्रातः – प्रातःकाल (पहले)
• एव – ही
• अयम् – यह (सेवक)
• कार्यम् – कार्य
• इति – इस प्रकार
• एव – ही
• मन्यते – मानता/समझता है ।

भावार्थ
सेवक को चाहे हितकारी वचन कठोर (पथ्यमप्युक्तं) कहे जाएँ, तो भी वह उन्हें सहन करता है; परन्तु वह निन्दा (अकारण आलोचना) को कदापि स्वीकार नहीं करता (नानुमन्येते)। इसके अलावा, वह अपने कार्य को प्रातःकाल ही (शीघ्रतम) पूरा करता है, और यही उसका परम कर्तव्य मानता है – 'करना है तो अभी करो' यही उसकी जीवन-शैली है।

दार्शनिक विवेचन

'पथ्यम्' और 'निन्दा' में अन्तर – पथ्य (हितकारी) कठोर हो सकता है, परन्तु वह 'सत्य' है; निन्दा 'असत्य' एवं 'द्वेष' पर आधारित है। यह विवेक (विवेक-बुद्धि) का विषय है। 'प्रातरेव' (शीघ्रता) – यह 'उद्यम' (Timeliness) का गुण है, जो 'काल-ज्ञान' से जुड़ा है। अनुजीवी का कर्म 'तुरंत' (अभी) ही प्रधान है, कल पर नहीं टाला जा सकता।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'परफॉर्मेंस रिव्यू' में 'कंस्ट्रक्टिव फीडबैक' (पथ्यम्) – चाहे वह कठोर (अप्युक्तं) क्यों न हो – को स्वीकार करना एवं उस पर कार्य करना (सहते) एक गुण है। परन्तु अकारण निन्दा (गॉसिप/बैड-माउथिंग) को स्वीकार न करना (नानुमन्यते) भी आत्म-सम्मान है। 'प्रातरेव' – आज के 'प्रोक्रैस्टिनेशन' (टालमटोल) के विरुद्ध यह मन्त्र है – 'जो करना है आज करो' (प्रातःकाल/प्राथमिकता)।

श्लोक ३९ (उपकार, माध्यस्थ्य, एवं नम्रता-पूर्वक कर्म)

श्लोक

उपकारेषु माध्यस्थ्यं द्वेष्यवृत्तिं च वर्जयेत् ।
तत्कृतं कर्म चान्येन कृतमित्यभिधीयते ॥३९॥

IAST

Upakāreṣu mādhyasthyaṃ dveṣyavṛttiṃ ca varjayet |
Tatkṛtaṃ karma cānyena kṛtamityabhidhīyate ||39||

शब्दार्थ
• उपकारेषु – उपकार/सहायता के कार्यों में
• माध्यस्थ्यम् – उदासीनता/तटस्थता
• द्वेष्यवृत्तिम् – द्वेषजनक/बैर-भावना वाली वृत्ति
• वर्जयेत् – त्याग दे

• तत्कृतम् – उस (सेवक) द्वारा किया गया
• कर्म – कार्य
• च – तथा
• अन्येन – दूसरे (व्यक्ति) के द्वारा
• कृतम् – किया हुआ
• इति – इस प्रकार
• अभिधीयते – (उसे) कहा जाता है/प्रकट किया जाता है (अर्थात् वह नम्रता से अपने कर्म का श्रेय दूसरों को देता है) ।

भावार्थ
सेवक को उपकार के कार्यों में उदासीन (माध्यस्थ्य) नहीं रहना चाहिए, तथा द्वेष-युक्त वृत्ति (बैर) का भी त्याग करना चाहिए। वह अपने द्वारा किये गये कार्य (तत्कृतम्) को इस प्रकार प्रस्तुत करे कि वह 'दूसरे (स्वामी/वरिष्ठ) के द्वारा किया गया' (अन्येन कृतम्) प्रतीत हो – अर्थात् वह बिना अहंकार के, अपने कर्म को स्वामी के नाम/नेतृत्व में समर्पित कर दे।

दार्शनिक विवेचन

'उपकारेषु माध्यस्थ्यं वर्जयेत्' – उपकार के समय तटस्थ (माध्यस्थ) रहना अकर्मण्यता (निष्क्रियता) है, जो तमोगुण है। वहीं 'द्वेष्यवृत्ति' रजोगुण है। इन दोनों से बचकर सत्त्वगुण में स्थित होकर कर्म करना चाहिए। 'अन्येन कृतम्' – यह 'निष्काम कर्म-योग' का लक्षण है, जहाँ सेवक 'अहंकार-रहित' होकर अपने सभी कर्मों को स्वामी (ईश्वर/राजा) को अर्पित कर देता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'टीम-वर्क' में, जो कर्मचारी किसी प्रोजेक्ट (उपकार) में उदासीन रहता है, वह टीम के लिए बोझ है। दूसरी ओर, जो कर्मचारी अपनी सफलता का श्रेय पूरी टीम एवं अपने मैनेजर (अन्येन कृतम्) को देता है, वह 'टीम-प्लेयर' एवं नम्र नेता माना जाता है। यह 'आइडिया-एगो' (विचार-अहंकार) को त्यागने का प्राचीन सूत्र है।

श्लोक ४० (शत्रु-उत्थान, उपेक्षा, आशा-वर्धन, एवं व्यूह-रचना)

श्लोक

विपक्षमुत्थापयति विनाशं चाप्युपेक्षते ।
कार्ये संवर्धयत्याशां पुनश्च कुरुतेऽन्यथा ॥४०॥

IAST

Vipakṣamutthāpayati vināśaṃ cāpypekṣate |
Kārye saṃvardhayatyāśāṃ punaśca kurute'nyathā ||40||

शब्दार्थ
• विपक्षम् – विपक्षी/शत्रु को
• उत्थापयति – उठाता/बढ़ावा देता है (नीति से)
• विनाशम् – विनाश/नाश
• च – तथा
• अपि – भी
• उपेक्षते – उपेक्षा/अनदेखी करता है

• कार्ये – कार्य में
• संवर्धयति – बढ़ाता/वर्धन करता है
• आशाम् – आशा (विपक्षी की)
• पुनः – फिर/परन्तु
• च – तथा
• कुरुते – करता है
• अन्यथा – इसके विपरीत / अन्य प्रकार से (वास्तविक योजना) ।

भावार्थ
यह अन्तिम श्लोक सेवक की **प्रायोगिक नीति-कुशलता** (राजनीति) बताता है – वह विपक्ष (शत्रु) को बढ़ावा (उत्थापयति) देता है, अर्थात् उसे क्रियाशील करके अपने जाल में फँसाता है, तथा उसके विनाश (नाश) के प्रति आँखें मूँद लेता है (उपेक्षते – दिखावा करता है)। वह उसे कार्य-सिद्धि की आशा (आशाम्) देता है (संवर्धयति), परन्तु फिर वास्तविकता में उसके विपरीत (अन्यथा) करता है – अर्थात् उसे धोखा देकर उसका विनाश करता है।

दार्शनिक विवेचन

यह *कूटनीति* (Diplomacy/Strategy) का उत्कृष्ट उदाहरण है – यहाँ 'सत्य-असत्य' का द्वन्द्व नहीं, बल्कि 'राज्य-हित' ही परम सत्य है। यह चाणक्य-नीति का 'उपेक्षा-नाटक' (उपेक्षते) तथा 'आशा-पाश' (आशा-संवर्धन) का सिद्धान्त है – शत्रु को आशा देकर, उसे भ्रमित करके उसका विनाश किया जाता है। यह 'साम, दाम, दण्ड, भेद' के अन्तर्गत 'भेद' एवं 'उपेक्षा' की चरम कला है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक व्यापार-जगत में यह 'प्रतियोगी-विश्लेषण' (Competitive Strategy) – जैसे किसी प्रतिद्वन्द्वी (विपक्ष) को कमज़ोर होते देखना एवं उसे गलत आशा देना (जैसे कि बाजार में नए उत्पाद की अफवाह) तथा फिर अपनी मूल रणनीति (अन्यथा) से उसे पछाड़ देना – यह 'पोर्टर की प्रतियोगी रणनीति' का प्राचीन रूप है। यह नैतिकता की सीमा पर है, किन्तु राजनीति-शास्त्र में 'हित' ही धर्म है।

श्लोक ४१ (वाक्य-माधुर्य एवं अर्थ-कठोरता)

श्लोक

यद्वाक्ये मधुरं किञ्चिदप्यर्थेन निष्ठुरम् ।
आचार्यसमशंसासु परिवादः केवलम् ॥४१॥

IAST

Yadvākye madhuraṃ kiñcidapyarthena niṣṭhuram |
Ācāryasamaśaṃsāsu parivādaḥ kevalam ||41||

शब्दार्थ
• यद्वाक्ये – जो वचन/बात
• मधुरम् – मधुर/सरस
• किञ्चित् अपि – थोड़ा सा भी
• अर्थेन – अर्थ/तात्पर्य के द्वारा

• निष्ठुरम् – कठोर/निष्ठुर
• आचार्यसमशंसासु – आचार्यों/विद्वानों की सभा/प्रशंसा में
• परिवादः – निन्दा/बदनामी
• केवलम् – केवल/मात्र ।

भावार्थ
जो वचन मधुर (सरस) तो है, परन्तु उसका अर्थ कठोर (निष्ठुर) है – वह विद्वानों (आचार्य) की सभा में निन्दा (परिवाद) मात्र है। बाहरी मिठास और आन्तरिक कठोरता – यह सज्जनों के समक्ष अशोभनीय है।

दार्शनिक विवेचन

यह *वाक्-शुद्धि* (Purity of Speech) का सिद्धान्त है – वचन में 'माधुर्य' एवं 'अर्थ' का समन्वय आवश्यक है। गीता के 'अनुद्वेगकरं वाक्यं' (जो उद्वेग न दे) से यह मेल खाता है। बाहरी मिठास और भीतरी कटुता (कपट) को 'परिवाद' (निन्दा) कहा गया है, जो आचार्यों की दृष्टि में नीच है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयीन संवाद में 'पैसिव-एग्रेसिव' (निष्क्रिय-आक्रामक) वार्तालाप – जहाँ शब्द मीठे पर भाव कठोर – इसी श्रेणी में आता है। यह अप्रत्यक्ष आलोचना (परिवाद) है, जो टीम-भावना को नष्ट करती है। पारदर्शी एवं स्पष्ट संवाद ही उत्तम है।

श्लोक ४२ (अकार्य-आचरण एवं वध्य-रक्षा)

श्लोक

अकार्येऽपि सकार्यः प्रसन्नश्चापि निष्फलः ।
वध्यकस्माद्व्रजति रक्ष्यो मुहुरीक्षते ॥४२॥

IAST

Akārye'pi sakāryaḥ prasannaścāpi niṣphalaḥ |
Vadhyakasmādvrajati rakṣyo muhurīkṣate ||42||

शब्दार्थ
• अकार्ये – अनुचित/निषिद्ध कार्य में
• अपि – भी
• सकार्यः – (जो) कार्य-रूप (व्यवहार) दिखाता है
• प्रसन्नः – प्रसन्न रहता है
• च – तथा
• अपि – भी
• निष्फलः – (वह) निष्फल है
• वध्य – वध/हिंसा से
• कस्मात् – क्योंकि
• व्रजति – (उससे) बचता है
• रक्ष्यः – रक्षा करने योग्य (व्यक्ति)

• मुहुः – बार-बार
• ईक्षते – देखता/ताकता है ।

भावार्थ
जो व्यक्ति अनुचित कार्य (अकार्य) में भी उसे सही/कार्य-रूप दिखाता है तथा प्रसन्न रहता है, वह निष्फल है। वह वध्य (हिंसक/दण्ड) से बचता है, और रक्ष्य (रक्षा करने योग्य/स्वामी) की बार-बार रक्षा करता है।

दार्शनिक विवेचन

'सकार्यः' – अकार्य को कार्यरूप में प्रस्तुत करना 'माया' (कपट) है, जो निष्फल है। 'वध्यकस्माद्व्रजति' अर्थात् स्वयं दण्ड से बचता है, परन्तु 'रक्ष्यो मुहुरीक्षते' – सच्चा सेवक स्वामी (रक्ष्य) की रक्षा हेतु सदा सतर्क रहता है। यह कर्तव्य-पालन (Dharma) का मार्ग है।

आधुनिक संदर्भ

आज के व्यवसाय में 'गलत काम को सही दिखाना' (जैसे कि खर्चों को गलत ढंग से प्रस्तुत करना) भ्रष्टाचार है, जो अन्ततः निष्फल है। एक जिम्मेदार प्रबंधक (रक्ष्य) की हित-रक्षा एवं सतर्कता (मुहुरीक्षते) ही उसकी सफलता का आधार है।

श्लोक ४३ (मान-सम्मान, दास्य-भाव एवं दक्षिणा)

श्लोक

आटयति मानानि ब्रुवन् दास्यं प्रपश्यति ।
सम्भावयति दक्षिणां वृत्तिमुद्धरति च ॥४३॥

IAST

Āṭayati mānāni bruvan dāsyaṃ prapaśyati |
Sambhāvayati dakṣiṇāṃ vṛttimuddharati ca ||43||

शब्दार्थ
• आटयति – (गुणों को) प्रकट/व्यक्त करता है
• मानानि – सम्मान/गौरव
• ब्रुवन् – कहता हुआ/बोलता हुआ
• दास्यम् – दास्य-भाव/सेवा-भक्ति
• प्रपश्यति – देखता है/अनुभव करता है
• सम्भावयति – सम्भावना/संभावित करता है
• दक्षिणाम् – दक्षिणा/दान/पुरस्कार/सहायता
• वृत्तिम् – आजीविका/चरित्र/व्यवसाय
• उद्धरति – उद्धार/निष्कर्ष निकालता/सुधारता
• च – तथा ।

भावार्थ
सेवक स्वामी के गुणों एवं सम्मान (मानानि) को प्रकट (आटयति) करता है, तथा दास्य-भाव (सेवा-निष्ठा) को धारण करता

है। वह दक्षिणा (पुरस्कार/सहायता) की व्यवस्था करता है तथा अपनी वृत्ति (आचरण/जीविका) को उद्धृत/शुद्ध करता है।

दार्शनिक विवेचन

'दास्यं प्रपश्यति' – यह 'दास्य-भाव' (शरणागति) का संकेत है, जो भक्ति-योग का अंग है। 'वृत्तिमुद्धरति' – केवल बाह्य सेवा नहीं, अपितु अपनी आन्तरिक वृत्ति (चरित्र) को भी उद्धृत करना (ऊँचा उठाना) आवश्यक है। यह सांख्य के 'सत्त्व-गुण' का व्यवहार है।

आधुनिक संदर्भ

आज के सेवा-क्षेत्र (सर्विस इंडस्ट्री) में 'ग्राहक-केन्द्रित' दृष्टिकोण – ग्राहक का सम्मान (मानानि) करना, सेवा-भाव (दास्य) रखना तथा उसे अतिरिक्त लाभ (दक्षिणा) देना – यही 'ग्राहक-अनुभव' (Customer Experience) का आधार है।

श्लोक ४४ (साधु-वाक्य का अन्यथा-अर्थ एवं विरसता)

श्लोक

साधूक्तमपि तद्वाक्यं समर्थयति चान्यथा ।
जल्पन्ति कथाभङ्गं धरति विरसीभवन् ॥४४॥

IAST

Sādhūktamapi tadvākyaṃ samarthayati cānyathā |
Jalpanti kathābhaṅgaṃ dharati virasībhavan ||44||

शब्दार्थ
• साधूक्तम् – साधु/उचित रूप से कहा हुआ
• अपि – भी
• तत् – वह
• वाक्यम् – वचन
• समर्थयति – समर्थन/व्याख्या करता है
• अन्यथा – अन्य प्रकार / विपरीत अर्थ से
• जल्पन्ति – (जो) बकवास/अनावश्यक वार्ता करते हैं
• कथाभङ्गम् – कथा का भंग/खंडन
• धरति – धारण करता है/सहन करता है
• विरसीभवन् – विरस (नीरस/अप्रिय) होता हुआ ।

भावार्थ
सेवक (या दुर्जन) साधु (उचित) रूप से कहे गये वचन का भी विपरीत (अन्यथा) अर्थ निकालता है (समर्थयति), तथा वह जल्प (बकवास/कुतर्क) करता है और कथा-भंग (वार्तालाप तोड़ना) को धारण करता है, जिससे वह विरस (अप्रिय/कटु) हो जाता है। सच्चा सेवक ऐसा नहीं करता।

दार्शनिक विवेचन

यह *वितण्डा-वाद* (Cavil/Destructive criticism) के विरुद्ध चेतावनी है – 'अन्यथा समर्थयति' अर्थात् 'उलट-पुलट अर्थ निकालना'। न्याय-शास्त्र में 'वितण्डा' को 'कुतर्क' कहा गया है, जो संवाद-शैली को विरस (कटु) कर देता है। सच्चा अनुजीवी 'संवाद-सौहार्द' (धार्मिक वार्ता) का पोषक होता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयीन बैठकों में 'कन्स्ट्रक्टिव' बनाम 'डिस्ट्रक्टिव' फीडबैक – साधु वचन को भी गलत अर्थ (अन्यथा) में लेना एवं अनावश्यक बहस (जल्प) करना 'टॉक्सिक' व्यवहार है। एक अच्छा कर्मचारी सकारात्मक एवं सरस संवाद-शैली अपनाता है।

श्लोक ४५ (शयन-सतर्कता एवं बाण-वेध में भी धैर्य)

श्लोक

उपास्यमानः शयने सुपरलघ्येन तिष्ठति ।
बाणेन वध्यमानोऽपि मुहुर्वचो विचेष्टते ॥४५॥

IAST

Upāsyamānaḥ śayane suparalaghyena tiṣṭhati |
Bāṇena vadhyamāno'pi muhurvaco viceṣṭate ||45||

शब्दार्थ

- उपास्यमानः – (स्वामी द्वारा) उपास्य/सेवित/आदर किया जाता हुआ
- शयने – शयन/सोने के स्थान पर (आराम/सुख में)
- सुपरलघ्येन – सुपरि+लघ्येन = अत्यन्त लघुता/विनम्रता से
- तिष्ठति – खड़ा/स्थित रहता है
- बाणेन – बाण/तीर द्वारा
- वध्यमानः – वध/आघात किया जाता हुआ
- अपि – भी
- मुहुः – बार-बार
- वचः – वचन/बात
- विचेष्टते – प्रयत्न/चेष्टा करता है (कहने की) ।

भावार्थ

सेवक शयन (विश्राम/सुख) के समय भी अत्यन्त विनम्रता (सुपरलघ्येन) से खड़ा/स्थित रहता है। यदि उसे बाण (तीर/आघात/कष्ट) द्वारा पीड़ित किया जाए, तो भी वह बार-बार (मुहुः) अपनी बात कहने का प्रयत्न (विचेष्टते) करता है – अर्थात् वह आपत्ति में भी अपना कर्तव्य-पालन एवं संवाद-निर्वाह नहीं छोड़ता।

दार्शनिक विवेचन

'शयन' सुख-प्रतीक है, 'बाण' कष्ट-प्रतीक। सेवक सुख में विनम्र, दुःख में धैर्यशील – यह 'सम-भाव' (Equanimity) है, जो योग-दर्शन का लक्षण है। 'मुहुर्वचो विचेष्टते' – कठिन परिस्थिति में भी सत्य-वचन का निर्वाह करना 'सत्याग्रह' का प्राचीन रूप है।

आधुनिक संदर्भ

आज के प्रोफेशनल जीवन में 'सुख-सुविधा' (शयन) में विनम्रता (सुपरलघ्येन) बनाए रखना तथा 'बाधाओं/आलोचना' (बाण) के बावजूद अपनी बात (रचनात्मक फीडबैक) को दोहराते रहना (मुहुर्वचः) – यह 'लचीलापन' (Resilience) एवं 'दृढ़ता' (Persistence) का आधार है।

श्लोक ४६ (दूत्य, विरति-लक्षण एवं राग-त्याग)

श्लोक

दूत्यादि वनुरत्स्य विरतस्य च लक्षणम् ।
रागादुततिं समुदेत विधानमेतस्य विवर्जयेत् ॥४६॥

IAST

Dūtyādi vanuratsya viratasya ca lakṣaṇam |
Rāgādutatiṃ samudeta vidhānametasya vivarjayet ||46||

शब्दार्थ

- दूत्य – दूत-कार्य/संदेश-वहन
- आदि – इत्यादि
- वनुरत्स्य – (यहाँ) विनय/आचरण?
- विरतस्य – विरक्त/निवृत्त/संयमी व्यक्ति का
- च – तथा
- लक्षणम् – लक्षण/पहचान
- रागात् – राग (आसक्ति/मोह) से
- उततिम् – (यहाँ) उत्पत्ति/उद्वेग?
- समुदेत – समुदित/सहित
- विधानम् – नियम/विधान
- एतस्य – इस (से)
- विवर्जयेत् – त्याग दे ।

भावार्थ

सेवक को दूत-कार्य (दूत्य) आदि में संलग्न रहते हुए, विरत (संयमी/निवृत्त) व्यक्ति के लक्षणों को जानना चाहिए। राग (आसक्ति) से उत्पन्न उद्वेग (उतति) से बचना चाहिए, तथा उचित विधान (नियम) का पालन करना चाहिए। जो इस (राग) को त्याग देता है, वही सच्चा सेवक है।

दार्शनिक विवेचन

'विरतस्य लक्षणम्' – विरक्ति (Vairagya) एवं संयम योग-दर्शन के प्रमुख अंग हैं। 'राग' (आसक्ति) ही संसार-बन्धन का कारण है। दूत्य-कार्य में राग-रहित एवं विरक्त-भाव से कर्म करना चाहिए, जैसे गीता का 'वीतराग' – यही 'निष्काम कर्म' है।

आधुनिक संदर्भ

आज के व्यवसाय में 'दूत्य' (नेगोशिएशन/बातचीत) के समय 'राग' (भावनात्मक आसक्ति/पूर्वाग्रह) से बचना आवश्यक है। 'विधानम्' (प्रोटोकॉल/नीति) का पालन करते हुए निष्पक्ष (विरत) रहना ही सफल वार्ताकार (Negotiator) का गुण है।

श्लोक ४७ (आपत्ति में स्वामी-त्याग न करें)

श्लोक

निर्मुणं बत भीतिसमापत्सु न परित्यजेत् ।
ततः परतरा नास्ति य आपत्सूपतिष्ठति ॥४७॥

IAST

Nirmuṇaṃ bata bhītisamāpatsu na parityajet |
Tataḥ paratarā nāsti ya āpatsūpatiṣṭhati ||47||

शब्दार्थ

• निर्मुणम् – (यहाँ) निर्मोह/निराश्रय / अथवा 'स्वामी' (पदच्युत/संकटग्रस्त)
• बत – निश्चय ही
• भीतिसमापत्सु – भय एवं आपत्ति (संकट) में
• न परित्यजेत् – त्याग न करे
• ततः – उससे
• परतरा – उत्तम/श्रेष्ठ
• नास्ति – नहीं है
• यः – जो
• आपत्सु – आपत्ति/संकट में
• उपतिष्ठति – समीप/सहायता करने आता है/स्थित रहता है ।

भावार्थ

आपत्ति एवं भय के समय सेवक को अपने संकटग्रस्त स्वामी (निर्मुणम्) का त्याग नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति संकट (आपत्सु) में स्वामी की सहायता हेतु उपस्थित (उपतिष्ठति) रहता है, उससे श्रेष्ठ (परतरा) कोई नहीं है। आपत्कालीन वफादारी ही सच्ची सेवा है।

दार्शनिक विवेचन

यह *आपद्धर्म* (Crisis Dharma) का सिद्धान्त है – 'निर्मुणम्' (निराश्रित/पीड़ित) की सेवा ही परम धर्म है। यह 'कृतज्ञता' एवं 'निष्ठा' (Loyalty) का शिखर है। महाभारत में विभीषण-रावण, या विदुर-धृतराष्ट्र के संबंध इसी सिद्धान्त को दर्शाते हैं – सच्चा सेवक संकट में साथ देता है, सुख में नहीं।

आधुनिक संदर्भ

आज के कॉर्पोरेट जगत में 'व्हिसलब्लोअर' या 'संकट-प्रबंधन' टीम – संकट (आपत्) में कम्पनी/बॉस का साथ देना (उपतिष्ठति) ही 'ट्रस्ट' (विश्वास) का मापदण्ड है। जो संकट में साथ दे, वही सच्चा सहयोगी है – यह 'लीडरशिप ट्रस्ट' का मूल सूत्र है।

श्लोक ४८ (सुख में सब संगी, विपत्ति में धर्मात्मा)

श्लोक

सुस्थवृत्तिषु सर्वाद्या नैव यान्त्यभिलष्यताम् ।
विपत्सु धर्मधुर्यीणां तेषां नामातिशयते ॥४८॥

IAST

Susthavṛttiṣu sarvādyā naiva yāntyabhilaṣyatām |
Vipatsu dharmadhuryīṇāṃ teṣāṃ nāmātiśayate ||48||

शब्दार्थ
• सुस्थवृत्तिषु – सुख/समृद्धि की स्थिति में
• सर्वाद्याः – सभी (लोग) प्रथम/आगे
• नैव – नहीं ही
• यान्ति – जाते/पहुँचते
• अभिलष्यताम् – अभिलषित/वांछित (लक्ष्य) तक
• विपत्सु – विपत्ति/संकट में
• धर्मधुर्यीणाम् – धर्म-धुरीणों (धर्म के वाहक/श्रेष्ठ) का
• तेषाम् – उनका
• नाम – नाम/कीर्ति
• अतिशयते – अतिशय/बढ़ जाती है ।

भावार्थ
सुख-समृद्धि (सुस्थवृत्ति) में तो सभी लोग (सर्वाद्याः) वांछित लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं (अर्थात् सब साथी हो जाते हैं), परन्तु विपत्ति (विपत्सु) में धर्म-धुरीण (धर्म के वाहक/सच्चे सेवक) ही अडिग रहते हैं – उनका नाम (कीर्ति) अतिशय (विशेष) रूप से बढ़ जाती है। विपत्ति ही सच्चे सेवक की पहचान है।

दार्शनिक विवेचन

'सुस्थवृत्तिषु सर्वाद्याः' – यह सामाजिक-मनोविज्ञान (Social Psychology) का सत्य है – भीड़ सफलता के साथ चलती है। परन्तु 'विपत्सु धर्मधुर्यीणाम्' – विपत्ति में 'धर्म-धुरीण' (जो धर्म को धारण करते हैं) का नाम अमर होता है। यह गीता के 'समदुःखसुखम्' (सुख-दुःख में समान) के सिद्धान्त से मेल खाता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के स्टार्ट-अप एवं बिजनेस में – जब कम्पनी सफल (सुस्थवृत्ति) होती है, तो सब जुड़ते हैं; परन्तु संकट (विपत्) में जो कर्मचारी/भागीदार डटे रहते हैं, वे ही 'धर्मधुरीण' होते हैं और उनकी प्रतिष्ठा (ब्रांड/नाम) अतिशय बढ़ती है। यही 'ब्रांड एंबेसडर' की पहचान है।

श्लोक ४९ (महतामुपकारिता – थोड़ा सा भी कल्याणकारी)

श्लोक

श्रद्धया चानुकूल्येन च महतामुपकारिता ।
कार्ये कल्याणमाधत्ते स्वल्पापि सुमतेरयम् ॥४९॥

IAST

Śraddhayā cānukūlyena ca mahatāmupakāritā |
Kārye kalyāṇamādhatte svalpāpi sumaterayam ||49||

शब्दार्थ

- श्रद्धया – श्रद्धा/विश्वास के साथ
- अनुकूल्येन – अनुकूलता/सहयोग-भाव से
- महताम् – महापुरुषों/वरिष्ठों की
- उपकारिता – उपकार/सहायता
- कार्ये – कार्य/प्रयोजन में
- कल्याणम् – कल्याण/मंगल/शुभ-फल
- आधत्ते – स्थापित/धारण करता है
- स्वल्पा अपि – थोड़ी सी भी
- सुमतेः – सुमति (सद्बुद्धि) वाले व्यक्ति की
- अयम् – यह (सेवा) ।

भावार्थ

श्रद्धा एवं अनुकूलता (सहयोग) से महापुरुषों (स्वामी/वरिष्ठ) का उपकार (सहायता) करना – वह कार्य कल्याणकारी (शुभ-फलदायी) होता है, चाहे वह सहायता थोड़ी सी (स्वल्पा) ही क्यों न हो। सुमति (सद्बुद्धि) वाले व्यक्ति के लिए थोड़ी-सी उपकारिता भी बड़ा फल देती है।

दार्शनिक विवेचन

यह *कर्म-फल* (Law of Karma) का सिद्धान्त है – 'स्वल्पापि' (अल्प) कर्म भी श्रद्धा एवं सद्भाव से किये जाने पर 'कल्याण' उत्पन्न करता है। गीता में 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्' – श्रद्धा ही फल का आधार है। 'महताम् उपकारिता' – महापुरुषों (सत्संग) की सेवा स्वयं में तप एवं पुण्य है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कार्यस्थल में 'मेन्टरशिप' एवं 'नेटवर्किंग' – वरिष्ठों (महताम्) की थोड़ी-सी सहायता एवं मार्गदर्शन (उपकारिता), यदि श्रद्धा एवं सहयोग-भाव (अनुकूल्येन) से ग्रहण की जाए, तो वह करियर में अत्यधिक कल्याणकारी (कल्याणम्) सिद्ध होती है।

श्लोक ५० (अकार्य-निषेध, अनुवर्तन एवं सदन-लक्षण – समापन)

श्लोक

अकार्यप्रतिषेधं वा वारये चानुवर्तनम् ।
सदक्षेपादिति सदनं बन्धुभृत्यानुजीविनाम् ॥५०॥

IAST

Akāryapratiṣedhaṃ vā vāraye cānuvartanam |
Sadakṣepāditi sadanaṃ bandhubhṛtyānujīvinām ||50||

शब्दार्थ

- अकार्यप्रतिषेधम् – अकार्य (अनुचित/निषिद्ध कार्य) का निषेध
- वा – अथवा
- वारयेत् – रोके/निवारण करे
- अनुवर्तनम् – (स्वामी का) अनुसरण/पालन
- सदक्षेपात् – सदा+क्षेपात् = सदा (निरन्तर) क्षेप/आक्षेप/उलाहना से
- इति – इस प्रकार
- सदनम् – सदन/गृह/स्थान (आश्रय-स्थल)
- बन्धु – बन्धु/संबंधी
- भृत्य – भृत्य/सेवक
- अनुजीविनाम् – अनुजीवियों (आश्रितों) का ।

भावार्थ

(आदर्श सेवक) अकार्य (अनुचित कार्य) का निषेध (प्रतिषेध) करता है, तथा (धर्म-कार्यों में) स्वामी का अनुसरण (अनुवर्तनम्) करता है। इस प्रकार, निरन्तर आक्षेप (क्षेप) से बचते हुए, वह बन्धुओं, भृत्यों एवं अनुजीवियों के लिए एक आदर्श 'सदन' (आश्रय-गृह) का निर्माण करता है – अर्थात् सुशासन एवं नीति का केन्द्र बनता है।

दार्शनिक विवेचन

यह सम्पूर्ण प्रकरण (सर्ग) का **निष्कर्ष** है – सेवक का परम धर्म 'अकार्य-निषेध' (अन्याय का विरोध) एवं 'धर्म-अनुवर्तन' (सत्य का अनुसरण) है। 'बन्धुभृत्यानुजीविनाम् सदनम्' – वह आश्रितों (टीम/प्रजा) के लिए 'सदन' (गृह/सुरक्षा-कवच) बनता है। यह 'राज-धर्म' एवं 'सेवा-धर्म' का अन्तिम उद्देश्य है – सबका कल्याण।

आधुनिक संदर्भ

आज के नेतृत्व (Leadership) का यही सार है – एक अच्छा मैनेजर/कर्मचारी (अनुजीवी) वह है जो अनैतिक कार्यों (अकार्य) का विरोध (प्रतिषेध) करता है, कम्पनी-नीति का अनुसरण (अनुवर्तन) करता है, तथा अपनी टीम (बन्धु-भृत्य) के लिए एक सुरक्षित एवं प्रेरणादायक वातावरण ('सदन') निर्मित करता है। यही सुशासन एवं कॉर्पोरेट संस्कृति का आधार है।

श्लोक ५१ (प्रणाम-दूत-चार एवं सावधानी)

श्लोक

प्रणामदूतचारेषु राजानमभिगच्छति ।
वेध्येयुः प्रमदाश्चापि उपायैर्नीडिकादिभिः ॥५१॥

IAST

Praṇāmadūtacāreṣu rājānamabhigacchati |
Vedhyeyuḥ pramadāścāpi upāyairnīḍikādibhiḥ ||51||

शब्दार्थ

- प्रणामदूतचारेषु – प्रणाम, दूत-कार्य एवं चार (गुप्तचर/संदेश) के कार्यों में
- राजानम् – राजा को
- अभिगच्छति – (जो) समीप जाता है
- वेध्येयुः – वेध (भेदन/आघात) से बचें
- प्रमदाः – प्रमाद/असावधानी
- च – तथा
- अपि – भी
- उपायैः – उपायों/साधनों से
- नीडिकादिभिः – नीड़ (घोंसला/शिविर/स्थान) आदि से ।

भावार्थ

जो सेवक प्रणाम, दूत-कार्य तथा गुप्तचर-व्यवहार (चार) में राजा के समीप जाता है, उसे सभी प्रकार के उपायों, स्थान-शिविर (नीडिका) आदि में सावधान रहना चाहिए तथा प्रमाद (असावधानी) एवं वेध (शत्रु-आघात/भेदन) से बचना चाहिए। गुप्त-कार्यों में चौकन्नापन ही सफलता का मूल है।

दार्शनिक विवेचन

यह *गुप्तचर-नीति* (Espionage/Intelligence) का सिद्धान्त है। 'नीडिका' (घोंसला/आश्रय-स्थल) की सुरक्षा पर बल – जैसे पक्षी अपने नीड़ की रक्षा करता है, वैसे सेवक को राज-कार्यों (दूत/चार) में अपने स्थान एवं उपायों की रक्षा करनी चाहिए। अर्थशास्त्र का 'सांवृत' (गुप्त) सिद्धान्त यहाँ प्रतिबिम्बित है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कूटनीति एवं कॉर्पोरेट जासूसी-रोधी (anti-espionage) नीतियाँ इसी पर आधारित हैं – संवेदनशील सूचनाएँ (दूत/चार) देते समय स्थान (नीडिका) एवं माध्यम (उपाय) की सुरक्षा एवं प्रमाद-त्याग अत्यन्त आवश्यक है। साइबर-सुरक्षा का यही मूलमन्त्र है।

श्लोक ५२ (राजा-उपेक्षा का परिणाम)

श्लोक

राजानं येऽत्युपेक्षन्ते संभ्रमं विविधं च ये ।
ते गच्छन्त्यकृतार्थास्तु पदं तेन पराभवम् ॥५२॥

IAST

Rājānaṃ ye'tyupekṣante saṃbhramaṃ vividhaṃ ca ye |
Te gacchantyakṛtārthāstu padaṃ tena parābhavam ||52||

शब्दार्थ

- राजानम् – राजा को
- ये – जो (लोग)
- अत्युपेक्षन्ते – अत्यधिक उपेक्षा/अनादर करते हैं
- संभ्रमम् – संभ्रम/सम्मान/आदर
- विविधम् – विविध/अनेक
- च – तथा
- ये – जो
- ते – वे
- गच्छन्ति – जाते/प्राप्त होते हैं
- अकृतार्थाः – अकृतार्थ (असफल/निष्फल)
- पदम् – पद/अवस्था को
- तेन – उस (उपेक्षा) से
- पराभवम् – पराभव/पराजय को ।

भावार्थ

जो लोग राजा की अत्यन्त उपेक्षा करते हैं, तथा विविध प्रकार के आदर-सम्मान (संभ्रम) से वंचित रखते हैं, वे अकृतार्थ (असफल) होते हैं और उस उपेक्षा के कारण पराभव (पराजय/पतन) को प्राप्त होते हैं। राजा का सम्मान एवं तत्पर-सेवा अनुजीवी का प्राण है।

दार्शनिक विवेचन

यह *शासन-व्यवस्था का यथार्थ* है – राजा (सत्ता/स्वामी) की उपेक्षा करना आत्म-विनाश का मार्ग है। 'संभ्रम' (आदर) केवल बाह्य नहीं, अपितु 'शासन-तन्त्र' (System) के प्रति निष्ठा का प्रतीक है। यह 'अहंकार' (अस्मिता) का परिणाम है, जो पतंजलि-योग में 'क्लेश' माना गया है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में वरिष्ठ प्रबंधन (राजा) की अनदेखी या अवमानना, या कम्पनी-नीति (संभ्रम) की उपेक्षा – सीधे तौर पर करियर-पतन (पराभव) एवं असफलता (अकृतार्थ) की ओर ले जाती है। संगठनात्मक पदानुक्रम (हायरार्की) का सम्मान अनिवार्य है।

श्लोक ५३ (भृत्यों की वन्दना एवं आज्ञा-प्रतीक्षा)

श्लोक

जयेत्यापय जीवेति नाथ देवेति चादरात् ।
आज्ञामस्य प्रतीक्षन्ते भृत्याः कुर्वन्तु सादरम् ॥५३॥

IAST

Jayetyāpaya jīveti nātha deveti cādarāt |
Ājñāmasya pratīkṣante bhṛtyāḥ kurvantu sādaram ||53||

शब्दार्थ

- जयेत् – जय (विजय) हो
- आपय – (आयुः) आप (आयुष्मान्)
- जीवेत् – जीवित रहें
- इति – इस प्रकार
- नाथ – हे नाथ/स्वामी
- देव – हे देव/प्रभु
- इति – इस प्रकार
- आदरात् – आदरपूर्वक
- आज्ञाम् – आज्ञा
- अस्य – इस (राजा) की
- प्रतीक्षन्ते – प्रतीक्षा करते हैं
- भृत्याः – भृत्य/सेवक
- कुर्वन्तु – करें
- सादरम् – सादर/आदर सहित ।

भावार्थ

भृत्य (सेवक) राजा को आदरपूर्वक 'जय हो', 'आयुष्मान् रहें', 'हे नाथ', 'हे देव' – इस प्रकार वन्दना करते हैं तथा उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा (प्रतीक्षन्ते) करते हैं, और सभी कार्य आदरपूर्वक (सादरम्) करते हैं। प्रतीक्षा-शीलता एवं विनम्र-सम्बोधन सेवा-धर्म के मूल हैं।

दार्शनिक विवेचन

'जय, आयु, जीव, नाथ, देव' – ये सम्बोधन केवल शब्द नहीं, अपितु 'शरणागति' (Surrender) के भाव हैं। 'प्रतीक्षा' (Waiting) – यह 'धैर्य' (क्षमा/सहनशीलता) का गुण है, जो सत्त्वगुण से सम्बद्ध है। सेवक की वाणी में 'आदर' का स्वर होना चाहिए, न कि 'आज्ञा-लाघव' (असावधानी)।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में 'प्रोफेशनल एटिकेट' – जैसे 'गुड मॉर्निंग सर', 'मैं आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा हूँ' – इसी का आधुनिक रूप है। वरिष्ठों का आदरपूर्वक अभिवादन एवं आज्ञा-प्रतीक्षा (प्रतीक्षन्ते) व्यावसायिक शिष्टाचार (Professional Decorum) की पहचान है।

श्लोक ५४ (भर्तृ-अनुवृत्ति एवं रक्षा-शक्ति)

श्लोक

भर्तृजितानुवृत्तित्वं सदृशं अनुजीविनाम् ।
रक्षास्यपि हि गृह्णन्ति निचयं छन्दानुवर्तिनाम् ॥५४॥

IAST

Bhartṛjitānuvṛttitvaṃ sadṛśaṃ anujīvinām |
Rakṣāsyapi hi gṛhṇanti nicayaṃ chandānuvartinām ||54||

शब्दार्थ

- भर्तृजित – स्वामी (भर्तृ) द्वारा जीते/प्राप्त
- अनुवृत्तित्वम् – अनुवृत्ति (पीछे चलना/सेवा-पालन)
- सदृशम् – समान/उचित
- अनुजीविनाम् – अनुजीवियों (आश्रितों) का
- रक्षा – रक्षा/सुरक्षा
- अस्य – इस (स्वामी) की
- हि – निश्चय ही
- गृह्णन्ति – ग्रहण/प्राप्त करते हैं
- निचयम् – निचय/संग्रह/सम्पत्ति
- छन्दानुवर्तिनाम् – छंद (इच्छा/नीति) का अनुसरण करने वालों की ।

भावार्थ

अनुजीवियों (आश्रितों) के लिए स्वामी (भर्तृ) की जीती हुई (स्थापित) नीति का अनुवर्तन (अनुसरण) ही सदृश (उचित) है। जो स्वामी-नीति (छन्द) का अनुसरण करते हैं, वे ही उसकी रक्षा एवं सम्पत्ति (निचय) को प्राप्त करते हैं। निष्ठापूर्वक अनुसरण ही सुरक्षा का मार्ग है।

दार्शनिक विवेचन

'भर्तृजितानुवृत्ति' – अर्थात् स्वामी द्वारा स्थापित मार्ग पर चलना ही सेवक-धर्म है। यह 'गुरु-शिष्य' परम्परा का 'अनुगमन' (अनुसरण) है। 'रक्षा' एवं 'निचय' (धन/सम्पदा) उन्हीं को मिलती है जो 'छन्द' (शासन-विधान) का पालन करते हैं – यह 'व्यवस्था-निष्ठा' (Institutional Loyalty) का सिद्धान्त है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक संगठनों में 'कम्पनी-पॉलिसी' (भर्तृजित) का पालन (अनुवृत्ति) ही कर्मचारी (अनुजीवी) के लिए लाभकारी है। नियम-कानून (छन्द) का पालन करने वालों को ही सुरक्षित रोजगार एवं विकास (निचय/रक्षा) प्राप्त होता है। यही 'ऑर्गनाइजेशनल कल्चर' का आधार है।

श्लोक ५५ (धी-सत्त्व-युक्तों के लिए अदुर्लभ)

श्लोक

धीसत्त्वयोगयुक्तानां किं दुरापं महात्मनाम् ।
छलदानुवर्तिनां लोके कः परः प्रियवादिनाम् ॥५५॥

IAST

Dhīsattvayogayuktānāṃ kiṃ durāpaṃ mahātmanām |
Chaladānuvartināṃ loke kaḥ paraḥ priyavādinām ||55||

शब्दार्थ

- धी – बुद्धि
- सत्त्व – आन्तरिक बल/सात्विकता
- योग – संयोग/युक्ति
- युक्तानाम् – जो युक्त/संपन्न हैं
- किम् – क्या
- दुरापम् – दुःख से प्राप्य (दुर्लभ)
- महात्मनाम् – महात्मा/उदारचेता व्यक्तियों के
- छल – छल/कपट (यहाँ 'छल' का अर्थ 'नीति-कौशल' या 'युक्ति')
- अनुवर्तिनाम् – अनुसरण करने वालों का
- लोके – इस लोक/संसार में
- कः – कौन
- परः – पराया/अन्य/श्रेष्ठ
- प्रियवादिनाम् – प्रिय/मधुर वचन बोलने वालों के ।

भावार्थ

जो महात्मा (उदार एवं बुद्धिमान) बुद्धि (धी), सत्त्व (आन्तरिक सामर्थ्य) तथा योग (क्रियात्मक युक्ति) से युक्त हैं, उनके लिए संसार में क्या दुर्लभ (दुरापम्) है? तथा जो नीति-कौशल (छल-अनुवर्तिनाम् – अर्थात् व्यावहारिक नीति) का अनुसरण करते हैं एवं प्रिय-वचन बोलते हैं, उनका लोक में कौन विरोधी (परः) हो सकता है?

दार्शनिक विवेचन

'धीसत्त्वयोग' – बुद्धि, सात्विक बल एवं क्रिया-योग – ये तीनों मिलकर 'त्रिविध-पुरुषार्थ' के साधन हैं। 'दुरापम्' (दुर्लभ) भी इनके लिए सुलभ है। 'छल' का अर्थ यहाँ कपट नहीं, बल्कि 'उपाय-कौशल' है, जैसे अर्थशास्त्र का 'साम-दाम-दण्ड-भेद' – यही सांख्य-योग का 'साधन-चतुष्टय' है।

आधुनिक संदर्भ

आज के बिजनेस जगत में 'स्मार्टनेस' (धी), 'रेजिलिएंस' (सत्त्व) एवं 'नेटवर्किंग स्किल्स' (योग) – इन तीनों से युक्त व्यक्ति के लिए कुछ भी असंभव (दुरापम्) नहीं है। साथ ही, प्रिय एवं कूटनीतिक वार्तालाप (प्रियवादिता) से कोई शत्रु (परः) नहीं टिकता – यह 'नो-फ्रिक्शन' कार्य-शैली है।

श्लोक ५६ (आलस्य, अतप एवं अकृतात्मा का पतन)

श्लोक

अलसस्याल्पतपसः निर्विद्यस्याकृतात्मनः ।
प्रदानकाले भवन्ति प्राप्तापि हि पराङ्मुखाः ॥५६॥

IAST

Alasasyālpatapasaḥ nirvidyasyākṛtātmanaḥ |
Pradānakāle bhavanti prāptāpi hi parāṅmukhāḥ ||56||

शब्दार्थ

- अलसस्य – आलसी व्यक्ति की
- अल्पतपसः – अल्प तप (प्रयास/साधना) वाले
- निर्विद्यस्य – निर्विद्य/असंतुष्ट/उदासीन
- अकृतात्मनः – अकृत-आत्मा (जिसने स्वयं को संस्कारित न किया हो)
- प्रदानकाले – दान/प्रदान/अवसर के समय
- भवन्ति – होते हैं
- प्राप्ता – प्राप्त हुई (वस्तु/अवसर)
- अपि – भी
- पराङ्मुखाः – पराङ्मुख/विमुख (दूर हो जाते हैं) ।

भावार्थ

आलसी, अल्प-प्रयासी, असंतुष्ट (निर्विद्य) तथा जिसने अपना आत्म-संस्कार नहीं किया (अकृतात्मा) – ऐसे व्यक्ति को प्रदान (अवसर/धन/पद) मिलने पर भी वे (अवसर/लोग) उससे विमुख (पराङ्मुख) हो जाते हैं। अयोग्य एवं आलसी व्यक्ति अवसरों को खो देता है।

दार्शनिक विवेचन

'अकृतात्मा' – जो आत्म-संस्कार (Self-discipline) से रहित है। यहाँ 'तप' का अर्थ केवल धार्मिक नहीं, बल्कि 'आन्तरिक प्रयास' है। संस्कृत-साहित्य में 'उद्यम' (प्रयत्न) ही पुरुषार्थ है। 'पराङ्मुखाः' – लक्ष्मी (सम्पदा) आलसी का साथ नहीं देती – यह 'अर्थशास्त्र' का नियम है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक करियर में 'सीखने की ललक' (तप) एवं 'आत्म-अनुशासन' (कृतात्मा) – इनके अभाव में (आलस्य/असंतोष) मिले अवसर (प्रदानकाले) भी हाथ से निकल जाते हैं। यही 'प्रोक्रैस्टिनेशन' (टालमटोल) एवं 'अवसर-क्षति' (Opportunity Loss) का प्राचीन सूत्र है।

श्लोक ५७ (विद्वान् एवं सेवा-विद् भृत्यों को सम्पदा)

श्लोक

ये गुरोर्येऽपि विद्वांसो ये च सेवाविदस्तथा ।
तेषामेव विकासिन्या भोग्या नृपतिसम्पदः ॥५७॥

IAST

Ye gurorye'pi vidvāṃso ye ca sevāvidastathā |
Teṣāmeva vikāsinya bhogya nṛpatisampadaḥ ||57||

शब्दार्थ

- ये – जो
- गुरोः – गुरु/वरिष्ठ/स्वामी के (हित में)
- येऽपि – जो भी
- विद्वांसः – विद्वान्/ज्ञानी
- ये – जो
- सेवाविदः – सेवा-विद् (सेवा-कला जानने वाले)
- तथा – तथा
- तेषाम् – उन्हीं के
- एव – ही
- विकासिन्या – विकासशील/समृद्ध
- भोग्या – भोगने योग्य
- नृपतिसम्पदः – राजा की सम्पदा/समृद्धि ।

भावार्थ

जो गुरु (स्वामी/वरिष्ठ) के हित के लिए कार्यशील हैं, जो विद्वान् हैं, तथा जो सेवा-विद् (सेवा-कला एवं शिष्टाचार में निपुण) हैं – उन्हीं के लिए राजा की सम्पदा (नृपतिसम्पदः) विकासशील (विकासिन्या) होकर भोग्य (उपभोग/सेवन) होती है। योग्य एवं निष्ठावान् ही सम्पदा के अधिकारी हैं।

दार्शनिक विवेचन

'विकासिन्या' – सम्पदा स्थिर नहीं, विकासशील है; वह योग्यों के साथ बढ़ती है। 'गुरोः', 'विद्वांसः', 'सेवाविदः' – तीनों गुण – निष्ठा, ज्ञान, कौशल – का समन्वय ही सम्पदा का अधिकारी बनाता है। यह भगवद्गीता के 'गुणकर्मविभाग' का राजनीतिक रूप है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में 'प्रमोशन' एवं 'बोनस' (सम्पदा) उन्हीं कर्मचारियों को मिलता है जो कम्पनी (गुरोः) के प्रति निष्ठावान, ज्ञान-सम्पन्न (विद्वांसः) एवं व्यावसायिक-कौशल (सेवाविदः) में निपुण हैं। यही 'परफॉर्मेंस कल्चर' का आधार है।

श्लोक ५८ (अप्रिय-पथ्य-वचन एवं वृद्ध-अनुशासन)

श्लोक

अप्रियोऽपि हि पथ्यः स्यादिति वृद्धानुशासनम् ।
वृद्धानुशासने तिष्ठन् प्रियतामधिगच्छति ॥५८॥

IAST

Apryo'pi hi pathyaḥ syāditi vṛddhānuśāsanam |
Vṛddhānuśāsane tiṣṭhan priyatāmadhigacchati ||58||

शब्दार्थ

- अप्रियः – अप्रिय/कड़वा (वचन)
- अपि – भी
- पथ्यः – पथ्य/हितकारी (औषध-तुल्य)
- स्यात् – हो सकता है
- इति – इस प्रकार
- वृद्धानुशासनम् – वृद्धों (अनुभवियों) का अनुशासन/शिक्षा है
- वृद्धानुशासने – वृद्ध-शिक्षा/नीति में
- तिष्ठन् – स्थित होकर
- प्रियताम् – प्रियता/आत्मीयता
- अधिगच्छति – प्राप्त करता है ।

भावार्थ

वृद्ध-अनुशासन (अनुभवी विद्वानों की शिक्षा) यह है कि कभी-कभी अप्रिय (कड़वा/कठोर) वचन भी पथ्य (हितकारी/औषधि-तुल्य) होता है। जो सेवक इस वृद्ध-अनुशासन पर स्थित रहता है, वह अन्ततः राजा/स्वामी की प्रियता (प्रियताम्) को प्राप्त करता है। सच्चा हित कटु भी हो सकता है।

दार्शनिक विवेचन

'पथ्यमप्यप्रियम्' – यह चरक-संहिता एवं नीति-शास्त्र का मूल है – औषधि कड़वी पर हितकारिणी। 'वृद्धानुशासन' – यह 'परम्परा' (Tradition) एवं 'अनुभव-जन्य ज्ञान' (Experiential Wisdom) का प्रतीक है। जो हित-वचन (चाहे अप्रिय हो) को ग्रहण करता है, वही 'प्रिय' (विश्वास-पात्र) बनता है – यह कर्म-विवेक का शिखर है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कार्यालयों में 'कंस्ट्रक्टिव फीडबैक' (पथ्यम्) प्रायः कठोर (अप्रियः) होता है, परन्तु यही विकास (प्रियता/विश्वास) का मार्ग है। सफल मैनेजर वह है जो मीठी बातों (प्रिय) की अपेक्षा हितकारी आलोचना (पथ्य) को महत्त्व देता है – यह 'रेडिकैंडर' (Radical Candor) का प्राचीन सूत्र है।

श्लोक ५९ (दाता राजा की प्रजा-रञ्जकता)

श्लोक

याजीयः सर्वभूतानां राजा पर्यवदात्मवान् ।
निराश्रयं त्यजन्त्येनं पुष्पितं वृक्षमिव द्विजाः ॥५९॥

IAST

Yājīyaḥ sarvabhūtānāṃ rājā paryavadātmavān |
Nirāśrayaṃ tyajantyenaṃ puṣpitaṃ vṛkṣamiva dvijāḥ ||59||

शब्दार्थ

- याजीयः – याजी (यज्ञ करने वाला/दानी/उदार)
- सर्वभूतानाम् – सभी प्राणियों का
- राजा – राजा
- पर्यवदात्मवान् – पर्यवदात+आत्मवान् = अत्यन्त शुद्ध-आत्मा/उदारचेता
- निराश्रयम् – निराश्रय (आश्रय-रहित/सम्पत्ति-रहित)
- त्यजन्ति – त्याग देते हैं
- एनम् – इस (राजा) को
- पुष्पितम् – पुष्पित/फलित
- वृक्षम् – वृक्ष को
- इव – समान
- द्विजाः – द्विज (पक्षी अथवा ब्राह्मण) ।

भावार्थ

जो राजा सब प्राणियों के प्रति उदार (याजीयः) एवं शुद्ध-आत्मा (पर्यवदात्मवान्) है, वह सबको आश्रय देता है; परन्तु जो राजा निराश्रय (कंजूस/निर्धन/अयोग्य) हो जाता है, तो उसे लोग उसी प्रकार त्याग देते हैं, जैसे पक्षी (द्विजाः) फूलों/फलों से रहित (निराश्रयम्) वृक्ष को त्याग देते हैं। दातृत्व ही राजा का आकर्षण है।

दार्शनिक विवेचन

'पुष्पितं वृक्षम्' – वृक्ष तभी आकर्षक होता है जब उसमें फल-फूल (दान/सम्पदा) हों। 'निराश्रयम्' – आश्रय-रहित होना अर्थात् 'दान-शून्य' होना। यह 'दान-धर्म' (Charity/Distribution of wealth) का सिद्धान्त है – राजा/नेता का 'पुण्य' उसके 'दान' (दायित्व-पालन) में है, न कि संचय में। महाभारत का 'दान-धर्म' यहाँ प्रतिबिम्बित है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक नेतृत्व (लीडरशिप) में 'लोकप्रियता' एवं 'विश्वसनीयता' नेता की उदारता एवं जन-हित-कार्यों (दान/याजीयः) पर निर्भर करती है। जो नेता/कम्पनी जनकल्याण (वृक्ष-पुष्प) में अरुचि दिखाती है, उसके हितधारक (पक्षी/द्विजाः) उसे छोड़ देते हैं – यह 'ब्रांड इक्विटी' एवं 'जन-विश्वास' का मूल है।

श्लोक ६० (दाता में राग – कुल, शील, शौर्य से परे)

श्लोक

कुलं वृत्तं शौर्यं शीलं सर्वमेतन्न गण्यते ।
दुर्दान्तेऽप्यकुलीनेऽपि जने दातरि रज्यते ॥६०॥

IAST

Kulaṃ vṛttaṃ śauryaṃ śīlaṃ sarvametanna gaṇyate |
Durdānte'pyakulīne'pi jane dātari rajyate ||60||

शब्दार्थ

- कुलम् – कुलीनता/वंश
- वृत्तम् – आचरण/चरित्र
- शौर्यम् – पराक्रम/वीरता
- शीलम् – सदाचार/शील
- सर्वम् – सब
- एतत् – यह
- न गण्यते – गणना में नहीं लिया जाता (मायने नहीं रखता)
- दुर्दान्ते – दुर्दान्त (दुर्जन/असंयत)
- अपि – भी
- अकुलीने – अकुलीन (नीच कुल/जन्म-हीन)
- अपि – भी
- जने – मनुष्य में
- दातरि – दाता (दानशील/उदार) में
- रज्यते – राग/आसक्ति होती है (लोग आकर्षित होते हैं) ।

भावार्थ

(सेवक-चयन अथवा राजा-गुण के संदर्भ में) कुलीनता (कुल), आचरण (वृत्त), वीरता (शौर्य) एवं शील (सदाचार) – ये सब कुछ नहीं गिने जाते, यदि व्यक्ति दाता (उदार/दानशील) न हो। यदि कोई जन्म से अकुलीन, आचरण से दुर्दान्त (उद्दण्ड) भी है, परन्तु दानशील (दातरि) है, तो लोग उसमें राग (आकर्षित/लिप्त) होते हैं। **दान/उदारता ही सर्वोच्च गुण है – यही सर्ग का अन्तिम निष्कर्ष है।**

दार्शनिक विवेचन

यह सम्पूर्ण पञ्चम सर्ग का **सर्वोपरि निष्कर्ष** (Ultimate Conclusion) है – 'दान' (उदारता/परोपकार) सभी गुणों को तोड़ देता है। चाणक्य ने भी कहा – "दानं श्रेष्ठम्" – कुल, शील, शौर्य सब गौण हैं। यह 'उपनिषदों' के 'दान-त्याग' (तप, दान, यज्ञ) के सिद्धान्त का राजनीतिक रूप है। आत्मा (जीव) का वास्तविक 'गुण' उसकी 'दान-शक्ति' (परहित-भाव) है, न कि बाह्य आभूषण (कुल/शील/शौर्य)।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कॉर्पोरेट एवं राजनीतिक जगत में यही सत्य है – 'जन-आकर्षण' (रज्यते) किसी की उच्च शिक्षा (कुल), अतीत (वृत्त) या पद (शौर्य) पर नहीं, बल्कि उसकी **सामाजिक उदारता एवं जन-कल्याणकारी कार्यों (दान/CSR)** पर निर्भर करता है। एक 'उदार' (दाता) व्यक्ति, चाहे वह सामान्य पृष्ठभूमि (अकुलीन) का क्यों न हो, जनता का प्रिय (रज्यते) बन जाता है। **यही प्रभावी नेतृत्व (Effective Leadership) का शाश्वत मन्त्र है – "उदारता ही सर्वश्रेष्ठ गुण है।"**

श्लोक ६१ (लक्ष्मी, वंश एवं वार्धक्य-क्रम)

श्लोक

लक्ष्मीरेवान्वये नैके न लघ्व्याः परतोऽन्वयः ।
यस्मिन् केशा वलिर्जीर्णा तरसा तत्क्रमानुगः ॥६१॥

IAST

Lakṣmīrevānvaye naike na laghvyāḥ parato'nvayaḥ |
Yasmin keśā valirjīrṇā tarasā tatkramānugaḥ ||61||

शब्दार्थ

- लक्ष्मीः – सम्पदा/धन
- एव – ही
- अन्वये – वंश/कुल में
- नैके – अकेली नहीं
- न – नहीं
- लघ्व्याः – लघु/नीच/तुच्छ (व्यक्तियों) का
- परतः – दूसरों/अन्य का
- अन्वयः – वंश/अनुक्रम
- यस्मिन् – जिस (व्यक्ति) में
- केशाः – केश/बाल (श्वेत)
- वलिः – झुर्रियाँ
- जीर्णाः – जीर्ण/वृद्धावस्था
- तरसा – बल/वेग/पराक्रम (या काल-क्रम) से
- तत्क्रमानुगः – उसी क्रम का अनुसरण करने वाला ।

भावार्थ

किसी वंश (अन्वय) में केवल लक्ष्मी (धन/सम्पदा) ही एकमात्र आधार नहीं है, और न ही नीच/तुच्छ व्यक्तियों (लघ्व्याः) का पर-वंश (दूसरों का अनुसरण) ही वंश-परम्परा है। जिस व्यक्ति में श्वेत केश, झुर्रियाँ एवं जीर्णता (वार्धक्य) आ जाती है, उसी के अनुसार क्रम (उत्तराधिकार/पदानुक्रम) का अनुसरण (अनुगः) होता है – अर्थात् अनुभव एवं वरिष्ठता ही वास्तविक वंश-क्रम है।

दार्शनिक विवेचन

यह *गुण-वरिष्ठता* (Merit-based seniority) का सिद्धान्त है – केवल जन्म (अन्वय) या धन (लक्ष्मी) से पद नहीं मिलता, बल्कि *ज्ञान-अनुभव-वार्धक्य* (केश/वलि/जीर्णा) से क्रम निर्धारित होता है। यह मनुस्मृति के 'वृद्ध-सेवा' एवं योग-दर्शन के 'जरा-मरण' के सत्य को प्रतिबिम्बित करता है – समय ही अन्तिम न्यायाधीश है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कॉर्पोरेट जगत में 'सीनियॉरिटी' (वरिष्ठता) और 'एक्सपीरियंस' (अनुभव) को ही 'केश-वलि-जीर्णता' (उम्र/अनुभव) का प्रतीक माना जाता है। केवल पैसा (लक्ष्मी) या कनेक्शन (परतोऽन्वय) किसी को शीर्ष पद नहीं दिलाता, अपितु उसका सिद्ध अनुभव एवं काल-क्रम (तत्क्रमानुगः) ही उसे योग्य बनाता है।

श्लोक ६२ (योग्य जनों की पूजा एवं कीर्ति-वन्दना)

श्लोक

उचिताश्च पूज्यन्ते जनाः कार्यार्थिभिर्नृपैः ।
श्रुत्वा प्रतितं केभिर्नु वन्दते मानवं पुनः ॥६२॥

IAST

Ucitāśca pūjyante janāḥ kāryārthibhirnṛpaiḥ |
Śrutvā pratitaṃ kebhirnu vandate mānavaṃ punaḥ ||62||

शब्दार्थ

- उचिताः – योग्य/उचित
- च – तथा
- पूज्यन्ते – पूजित/सम्मानित होते हैं
- जनाः – लोग
- कार्यार्थिभिः – कार्य-सिद्धि के इच्छुक
- नृपैः – राजाओं/शासकों द्वारा
- श्रुत्वा – सुनकर
- प्रतितम् – प्रतीत/ख्यात/प्रसिद्ध (गुणों को)
- केभिः – किसके द्वारा
- नु – निश्चय ही
- वन्दते – वन्दना/प्रणाम करता है
- मानवम् – मनुष्य/व्यक्ति को
- पुनः – फिर/बार-बार ।

भावार्थ

कार्य-सिद्धि के इच्छुक राजा (शासक) उन्हीं योग्य (उचित) जनों का सम्मान (पूज्यन्ते) करते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी योग्य व्यक्ति के प्रसिद्ध (प्रतितम्) गुणों को सुनता है (श्रुत्वा), तो वह उस मानव (योग्य व्यक्ति) को बार-बार (पुनः) वन्दना (प्रणाम) क्यों नहीं करता? अर्थात् अवश्य करता है – योग्यजन सर्वत्र पूजनीय हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *गुण-ग्रहण-शक्ति* (Appreciation of Virtue) का सिद्धान्त है। 'श्रुत्वा प्रतितम्' – ख्याति एवं यश (Reputation) ही आदर का आधार है। मीमांसा-दर्शन में 'शब्द-प्रमाण' (आप्त-वचन) का जो स्थान है, वही यहाँ 'प्रतित-गुण-श्रवण' है – सज्जनों की कीर्ति उन्हें स्वतः पूजनीय बना देती है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक पेशेवर जगत में 'ब्रांड-रिपुटेशन' (ख्याति/प्रतितम्) और 'पब्लिक अप्रीसिएशन' – योग्य व्यक्तियों (उचित जन) को कार्य-क्षमता (कार्यार्थिभिः) के लिए सम्मान दिया जाता है। कोई भी विवेकी व्यक्ति (केनु) किसी सिद्ध-प्रतिभा (मानवम्) को बार-बार नमन करता है – यही 'नेटवर्किंग' एवं 'मेन्टरशिप' का आधार है।

श्लोक ६३ (अर्थी का ज्वलन्त-समीप एवं क्षीण-मातृ-त्याग)

श्लोक

अर्थी जीवलोकेभ्यो ज्वलन्तमुपसर्पति ।
क्षीणक्षीरां निरार्द्रां वत्सस्त्यजति मातरम् ॥६३॥

IAST

Arthī jīvalokebhyo jvalantamupasarpati |
Kṣīṇakṣīrāṃ nirārdrāṃ vatsastyajati mātaram ||63||

शब्दार्थ

- अर्थी – अर्थ (धन/लक्ष्य) की इच्छा रखने वाला
- जीवलोकेभ्यः – जीव-लोक/संसार से (या 'लोकेभ्यः' = लोगों में से)
- ज्वलन्तम् – ज्वलंत/तेजस्वी/समृद्ध (व्यक्ति) को
- उपसर्पति – समीप जाता है
- क्षीणक्षीराम् – क्षीण-क्षीरा (जिसका दूध समाप्त हो गया हो)
- निरार्द्राम् – निरार्द्रा (शुष्क/रस-हीन)
- वत्सः – बछड़ा
- त्यजति – त्याग देता है
- मातरम् – माता/गाय को ।

भावार्थ

अर्थ-कामना वाला व्यक्ति संसार-जीवों में से उसी (ज्वलन्तम् – तेजस्वी/समृद्ध) के पास जाता है, जिससे उसे लाभ मिले। जैसे बछड़ा (वत्सः) उस गाय (मातरम्) को त्याग देता है, जिसका दूध समाप्त (क्षीणक्षीरां) हो गया हो और जो रसहीन (निरार्द्राम्) हो गई हो – उसी प्रकार लोग स्वार्थ-सिद्धि हेतु समृद्ध का आश्रय लेते हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *लौकिक-स्वार्थ-सत्य* (Worldly Self-interest) का यथार्थ चित्रण है – यहाँ 'माता' का त्याग कठोर है, परन्तु नीति-शास्त्र यह कटु-सत्य बताता है कि संसार में 'उपयोगिता' (अर्थ/सिद्धि) ही आकर्षण का मूल है। यह अर्थशास्त्र का 'उपकार-प्रत्युपकार' (Reciprocity) का नियम है, जो 'अहं-भाव' के प्रति सचेत करता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के बाजार एवं करियर-जगत में लोग (अर्थी) उन्हीं नेताओं/कम्पनियों (ज्वलन्तम्) की ओर आकर्षित होते हैं जो समृद्ध एवं उपयोगी हैं, और पुराने/निष्क्रिय (क्षीणक्षीरां) संसाधनों/संबंधों को छोड़ देते हैं – यह 'अपस्किलिंग' एवं 'नेटवर्क शिफ्ट' का प्राचीन मनोविज्ञान है।

श्लोक ६४ (अनुजीवियों की वृत्ति का वर्णानुकूल-विधान)

श्लोक

अदापयन्नृपः कालं भूत्यानामनुजीविनाम् ।
वर्णानामानुरूप्येण वृत्तिं समनुकल्पयेत् ॥६४॥

IAST

Adāpayannṛpaḥ kālaṃ bhūtyānāmanujīvinām |
Varṇānāmānurūpyeṇa vṛttiṃ samanukalpayet ||64||

शब्दार्थ
• अदापयन् – (जो) दाप/कष्ट/हानि न देता हो
• नृपः – राजा
• कालम् – समय (अनुचित/विलम्ब)
• भृत्यानाम् – भृत्य/सेवकों की
• अनुजीविनाम् – अनुजीवियों/आश्रितों की
• वर्णानाम् – वर्ण/श्रेणियों/पद-क्रमों के
• आनुरूप्येण – अनुरूपता के अनुसार
• वृत्तिम् – आजीविका/वेतन/नियुक्ति
• समनुकल्पयेत् – उचित रूप से निर्धारित/व्यवस्थित करे ।

भावार्थ
राजा (शासक) को चाहिए कि वह अपने अनुजीवियों (भृत्यों/सेवकों) को समय-कष्ट (कालं) न दे – अर्थात् उनके वेतन/नियुक्ति में विलम्ब या अन्याय न करे, और उनकी वर्ण (पद-श्रेणी/योग्यता) के अनुरूप ही उनकी वृत्ति (आजीविका/वेतनमान) का विधान (समनुकल्पयेत्) करे। योग्यता एवं पद के अनुसार पारिश्रमिक ही न्याय-संगत है।

दार्शनिक विवेचन

यह *वर्ण-व्यवस्था का आधुनिक रूप* – अर्थात् 'योग्यतानुसार विभाजन' (Merit-based distribution) – है। 'वर्ण' यहाँ जन्म नहीं, अपितु 'गुण-कर्म-विभाग' (भगवद्गीता ४.१३) है। 'कालम् अदापयन्' – सेवकों को समय पर वेतन न देना 'अधर्म' है – यह 'श्रम-प्रतिष्ठा' (Dignity of Labour) का सिद्धान्त है।

आधुनिक संदर्भ

आज के HR नीतियों में 'जॉब ग्रेडिंग' (वर्णानामानुरूप्येण) और 'टाइमली सैलरी' (कालम् अदापयन्) – यही सिद्धान्त कार्य करता है। कर्मचारी को उसकी भूमिका (वर्ण) एवं योग्यता के अनुसार वेतन (वृत्ति) देना तथा समय पर भुगतान (काल-अदाप) – यही कॉर्पोरेट न्याय एवं कर्मचारी-संतोष का आधार है।

श्लोक ६५ (काल-स्थान-पात्र-विवेक एवं वृत्ति-विनियोग)

श्लोक

काले स्थाने च पात्रे च न द्रव्यं विनियोजयेत् ।
एतद्वृत्तिविनियोगेन राजा भवति गर्हितः ॥६५॥

IAST

Kāle sthāne ca pātre ca na dravyaṃ viniyojayet |
Etadvṛttiviniyogena rājā bhavati garhitaḥ ||65||

शब्दार्थ
• काले – उचित समय पर

• स्थाने – उचित स्थान पर
• पात्रे – उचित पात्र/व्यक्ति पर
• न – नहीं
• द्रव्यम् – धन/साधन/सम्पदा
• विनियोजयेत् – (जो) विनियोग/व्यय न करे
• एतत् – यह (इस प्रकार का)
• वृत्तिविनियोगेन – आजीविका/साधनों के विनियोग से
• राजा – राजा
• भवति – होता है
• गर्हितः – गर्हित/निन्दित/अपमानित ।

भावार्थ
राजा को चाहिए कि वह उचित काल (समय), उचित स्थान (स्थाने) और उचित पात्र (व्यक्ति) पर ही अपने साधनों (द्रव्य) का विनियोग करे। यदि वह इस विवेक के बिना वृत्ति-विनियोग करता है, तो वह राजा गर्हित (निन्दित) होता है। समय, स्थान, पात्र – इन तीनों का ज्ञान ही सत्कर्म की कुंजी है।

दार्शनिक विवेचन

'काल-स्थान-पात्र' – यह *त्रिविध-विवेक* (Three-fold discretion) है, जो अर्थशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र (भरत-मुनि) दोनों में प्रधान है। 'वृत्ति-विनियोग' का अर्थ केवल धन नहीं, बल्कि समस्त साधन-सम्पदा है। जो इस विवेक से रहित है, वह 'गर्हित' (बुद्धिमानों द्वारा निन्दित) होता है – यही 'प्रमाद' (Negligence) का परिणाम है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक प्रबंधन में 'राइट टाइम, राइट प्लेस, राइट पर्सन' (काल-स्थान-पात्र) – यही 'प्रोजेक्ट मैनेजमेंट' एवं 'रेसोर्स एलोकेशन' का मूल मन्त्र है। बिना विवेक के बजट (द्रव्य) या संसाधन खर्च करने वाली कम्पनी (राजा) निन्दित (गर्हितः) होती है और उसकी छवि धूमिल हो जाती है।

श्लोक ६६ (अपकार-त्याग, सद्गर्हण-निषेध एवं प्रजापीड़ा)

श्लोक

अपकारं जातु न कुर्यात् सद्भिर्गर्हितम् ।
प्रजापीडनसंसर्गादन्यचित्तं विनश्यति ॥६६॥

IAST

Apakāraṃ jātu na kuryāt sadbhirgarhitam |
Prajāpīḍanasaṃsargādanyacittaṃ vinaśyati ||66||

शब्दार्थ
• अपकारम् – अपकार/हानि/अन्याय

• जातु – कभी भी
• न कुर्यात् – न करे
• सद्भिः – सज्जनों/साधुओं द्वारा
• गर्हितम् – गर्हित/निन्दित
• प्रजापीडन – प्रजा/लोगों को पीड़ा
• संसर्गात् – संसर्ग/लगाव/कर्म से
• अन्यचित्तम् – अन्य-चित्त (विक्षिप्त/अन्यमनस्क)
• विनश्यति – विनष्ट हो जाता है ।

भावार्थ
राजा/शासक को कभी भी ऐसा अपकार (अन्याय/हानि) नहीं करना चाहिए, जो सज्जनों (सद्भिः) द्वारा निन्दित (गर्हितम्) हो। प्रजा-पीड़न (जनता को कष्ट) के कारण शासक का चित्त अन्यत्र (अन्यचित्तम् – असंतुलित/भ्रष्ट) हो जाता है, और वह अन्ततः विनाश को प्राप्त होता है। जन-हित-विरुद्ध आचरण स्वयं का पतन है।

दार्शनिक विवेचन

'सद्भिर्गर्हितम्' – यह *लोक-संग्रह* (Public Opinion) एवं *सदाचार-मीमांसा* है। 'प्रजापीडन' – यह 'अधर्म' का मूल है। जो अत्याचार करता है, उसकी बुद्धि (चित्त) कुण्ठित हो जाती है (अन्यचित्तम्) – यह मानसिक-असंतुलन (Mental imbalance) का दार्शनिक कारण है, जैसा कि पतंजलि के 'विपर्यय-क्लेश' में वर्णित है।

आधुनिक संदर्भ

आज के सुशासन (Governance) एवं कॉर्पोरेट-नीतिशास्त्र में 'जन-हित' (प्रजा) के विरुद्ध कार्य (अपकार) करने वाले नेता/कम्पनी की निन्दा (सद्भिर्गर्हितम्) होती है। जन-दोहन (पीड़न) से संगठन का मनोबल गिरता है (अन्यचित्तम्) और अन्ततः उसका पतन (विनश्यति) निश्चित है – यही 'ESG' (Environment, Social, Governance) का प्राचीन सूत्र है।

श्लोक ६७ (संशय-प्राप्त-विषय की वयो-रूप-परीक्षा)

श्लोक

कुत्रचिद्यच्छ्रुतं भवेत् सशल्यं भूतपूर्वकम् ।
वयोरूपसम्प्रेक्ष्य आद्रियेत महात्मवान् ॥६७॥

IAST

Kutracidyacchrutaṃ bhavet saśalyaṃ bhūtapūrvakam |
Vayorūpasamprekṣya ādriyeta mahātmavān ||67||

शब्दार्थ
• कुत्रचित् – कहीं भी / किसी भी विषय में
• यत् – जो
• श्रुतम् – सुना गया / प्राप्त जानकारी
• भवेत् – हो
• सशल्यम् – शल्य (काँटा/संदेह/दोष) सहित
• भूतपूर्वकम् – भूत-पूर्व (अतीत में घटित / ऐतिहासिक)

• वयोरूप – वय (आयु) एवं रूप (स्वरूप/प्रमाण/गुण)
• सम्प्रेक्ष्य – सम्यक् परीक्षण करके
• आद्रियेत – आदर/ग्रहण करे
• महात्मवान् – महात्मा/उदारचेता/विवेकी ।

भावार्थ
यदि कहीं से कुछ सुना/प्राप्त हो (श्रुतं), जो संदिग्ध (सशल्यम् – काँटे/दोष सहित) अथवा अतीत-सम्बन्धी (भूतपूर्वकम्) हो, तो विवेकी (महात्मवान्) व्यक्ति उसे उसकी आयु-प्रमाण (वयः) एवं स्वरूप-गुण (रूप) की सम्यक् परीक्षा (सम्प्रेक्ष्य) करके ही आदर-ग्रहण (आद्रियेत) करे – अर्थात् अन्धविश्वास न करे, प्रामाणिकता जाँचे।

दार्शनिक विवेचन

'सशल्यम्' – ज्ञान में 'शल्य' (काँटा) = 'दूषित-प्रमाण' (Corrupted evidence) है। यहाँ 'प्रमाण-शास्त्र' (Epistemology) का प्रयोग है – किसी भी 'श्रुत' (परम्परागत/सुनी-सुनाई) बात को बिना 'वयोरूप-परीक्षा' (Critical examination) के स्वीकार न करें। यह चार्वाक, न्याय एवं मीमांसा के 'तर्क-प्रमाण' (Logical evidence) का मेल है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक 'फैक्ट-चेकिंग' एवं 'सोर्स वेरिफिकेशन' – यही सिद्धान्त है। सोशल मीडिया पर फैली किसी भी ऐतिहासिक/संदिग्ध (सशल्यम्/भूतपूर्वकम्) सूचना को बिना उसके स्रोत (वयः/रूप – प्रामाणिकता) की पुष्टि किए स्वीकार न करें – यही 'डिजिटल साक्षरता' (Digital Literacy) एवं 'क्रिटिकल थिंकिंग' है।

श्लोक ६८ (कुलीन-सद्वृत्त-मनस्वी का सम्मान)

श्लोक

कुलीनान्नावमन्येत सम्यग्वृत्तान्मनस्विनः ।
नयज्ञान् सत्त्वसम्पन्नान् सत्कुर्यान्मानदेतया ॥६८॥

IAST

Kulīnānnāvamanyeta samyagvṛttān manasvinaḥ |
Nayajñān sattvasampannān satkuryān mānadayā ||68||

शब्दार्थ
• कुलीनान् – कुलीन/उत्तम-वंशज
• न – नहीं
• अवमन्येत – अवमान/अपमान करे
• सम्यक्वृत्तान् – सम्यक्-वृत्त (सदाचारी/सुशील)
• मनस्विनः – मनस्वी (धैर्यवान/महामनाः)
• नयज्ञान् – नय-ज्ञ (नीति/राजनीति-ज्ञाता)
• सत्त्वसम्पन्नान् – सत्त्व (आन्तरिक बल/सात्विकता) से सम्पन्न
• सत्कुर्यात् – सत्कार/सम्मान करे
• मानदेतया – मान-देता (मान/सम्मान देने वाली) वृत्ति से ।

भावार्थ
राजा/शासक को कुलीन, सदाचारी (सम्यग्वृत्त), मनस्वी (धैर्यवान), नीति-ज्ञ (नयज्ञ) एवं सत्त्व-सम्पन्न व्यक्तियों का कभी अपमान (नावमन्येत) नहीं करना चाहिए, बल्कि उनका सम्मान (सत्कुर्यात्) उस मानदाता-भाव (सम्मान-प्रदाता वृत्ति) से करना चाहिए। गुणीजनों का सम्मान ही राज्य की शोभा है।

दार्शनिक विवेचन

'सत्त्वसम्पन्नान्' – सांख्य-योग के 'सत्त्वगुण' (शुद्धता, ज्ञान, संतुलन) से युक्त व्यक्ति। 'नयज्ञ' – अर्थशास्त्र के 'नय' (नीति) का ज्ञाता। ये पाँच गुण – कुल, वृत्त, मनस्, नय, सत्त्व – मिलकर एक 'आदर्श मंत्री/सेवक' की पहचान हैं। इनका अपमान राजा का 'अधर्म' है – जैसा कि विदुर-नीति में वर्णित है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कार्यालयों में 'टैलेंट-रिटेंशन' एवं 'डायवर्सिटी' – इन्हीं गुणों (कुलीन/सुशिक्षित, नीतिज्ञ, आत्म-बलवान) वाले लोगों का सम्मान (सत्कुर्यात्) आवश्यक है। किसी योग्य कर्मचारी का अपमान (अवमान) करना संगठन के लिए घातक है – यही 'अम्प्लॉयी एंगेजमेंट' का मूल है।

श्लोक ६९ (उदार-गुण-युक्त मध्यम-अधम-नियोग)

श्लोक

गुणैरुदारैः संयुक्तान् प्रयुञ्ज्यान्मध्यमाधमान् ।
महत्त्वं प्राप्नुवन्त्येते व्यतिरिच्य नरेगुरुम् ॥६९॥

IAST

Guṇairudāraiḥ saṃyuktān prayuñjyān madhyamādhamaān |
Mahattvaṃ prāpnuvantyete vyatiricya naregurum ||69||

शब्दार्थ
• गुणैः – गुणों से
• उदारैः – उदार/श्रेष्ठ गुणों से
• संयुक्तान् – जो युक्त/संपन्न हैं
• प्रयुञ्ज्यात् – नियुक्त/कार्य-भार दे
• मध्यमाधमान् – मध्यम एवं अधम (पद/श्रेणी) के व्यक्तियों को
• महत्त्वम् – महत्त्व/गरिमा/बड़प्पन
• प्राप्नुवन्ति – प्राप्त करते हैं
• एते – ये (नियुक्त व्यक्ति)
• व्यतिरिच्य – (जो) अतिरिक्त/अधिक हो
• नरेगुरुम् – नर-गुरु (मनुष्य-गुरु/वरिष्ठ) से भी ।

भावार्थ
राजा/शासक को उदार/श्रेष्ठ गुणों (गुणैरुदारैः) से युक्त मध्यम एवं निम्न-श्रेणी (मध्यमाधमान्) के व्यक्तियों को भी उचित कार्यों पर नियुक्त (प्रयुञ्ज्यात्) करना चाहिए। ये नियुक्त व्यक्ति अपने गुणों के बल पर, अपने मनुष्य-गुरु (तात्कालिक

वरिष्ठ) से भी अधिक (व्यतिरिच्य) महत्त्व (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त कर लेते हैं – अर्थात् सही नियुक्ति निम्न-कोटि को भी उत्कृष्ट बना देती है।

दार्शनिक विवेचन

यह *कर्म-विभाग-कौशल* (Delegation and Empowerment) का सिद्धान्त है। 'मध्यमाधमान्' को 'उदार-गुण' (नेतृत्व-गुण) देकर नियुक्त करना – यह 'क्षमता-विकास' (Capacity Building) है। 'नरेगुरुम्' से अधिक महत्त्व प्राप्त करना दर्शाता है कि *कार्य-क्षेत्र* (Context) एवं *अवसर* (Opportunity) किसी व्यक्ति को उसके वंश/गुरु से भी ऊँचा उठा सकते हैं।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक प्रबंधन में 'टैलेंट पाइपलाइन' – मध्यम/जूनियर (मध्यमाधमान्) स्तर के कर्मचारियों को भी यदि अच्छे अवसर व प्रशिक्षण (गुणैरुदारैः) दिए जाएँ, तो वे अपने मैनेजर (नरेगुरुम्) से भी आगे निकल जाते हैं। यही 'मेन्टरिंग एंड सक्सेशन प्लानिंग' का मूल है।

श्लोक ७० (उत्तम-अभिजन को नीच-संग-त्याग एवं विवेक से संरक्षण)

श्लोक

उत्तमाभिजनोपेतान्न नीचैः सह वर्तयेत् ।
क्रूराऽपि दि विवेकेन याति संरक्षणीयताम् ॥७०॥

IAST

Uttamābhijanopetān na nīcaiḥ saha vartayet |
Krūrā'pi di vivekena yāti saṃrakṣaṇīyatām ||70||

शब्दार्थ

- उत्तमाभिजनोपेतान् – उत्तम-अभिजन (श्रेष्ठ कुल/संस्कार) से सम्पन्न व्यक्तियों को
- न – नहीं
- नीचैः – नीच (तुच्छ/दुर्जन) लोगों के साथ
- सह – साथ
- वर्तयेत् – रखे/सम्बद्ध करे
- क्रूरः – क्रूर/कठोर व्यक्ति
- अपि – भी
- दि – (यहाँ) 'अपि' ही है, 'दि' मुद्रण-त्रुटि; अर्थ – 'भी'
- विवेकेन – विवेक/समझदारी से
- याति – प्राप्त होता है
- संरक्षणीयताम् – संरक्षण-योग्यता (रक्षा/आश्रय के योग्य) को ।

भावार्थ

राजा/शासक को उत्तम-कुल/संस्कार (अभिजन) से सम्पन्न व्यक्तियों को नीच/दुर्जन व्यक्तियों के साथ नहीं रखना/सम्बद्ध करना चाहिए (न वर्तयेत्)। इसके अतिरिक्त, यदि कोई व्यक्ति क्रूर (कठोर) भी है, तो विवेक-पूर्वक व्यवहार (विवेकेन)

करके उसे भी संरक्षण-योग्य (सुरक्षित/आदरणीय) बनाया जा सकता है – अर्थात् समझदारी से दुर्व्यवहारी को भी सुधारा जा सकता है।

दार्शनिक विवेचन

यह *सत्संग-विवेक* (Good company) एवं *क्रूर-शमन-नीति* (Taming the cruel) का सिद्धान्त है। 'उत्तमाभिजन' को 'नीचैः' के साथ रखना उनके गुणों का ह्रास है – यह मनु-नीति का 'सत्संग-प्रभाव' है। वहीं 'क्रूराऽपि विवेकेन' – यह 'दण्ड-नीति' का सौम्य रूप है – बुद्धि एवं कूटनीति से कठोर हृदय को भी नर्म किया जा सकता है, जैसा कि विदुर-नीति में उपदेश है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक HR नीति में 'टीम-कम्पोजिशन' – उच्च-संस्कारी/प्रतिभाशाली कर्मचारियों (उत्तमाभिजन) को विषैले/नकारात्मक (नीचैः) सहकर्मियों के साथ नहीं रखा जाता। इसके अलावा, 'क्रूर' (टॉक्सिक) कर्मचारी को भी सही मार्गदर्शन (विवेकेन) देकर सुधारा (संरक्षणीयताम्) जा सकता है – यही 'परफॉर्मेंस इम्प्रूवमेंट प्लान' (PIP) का प्राचीन दर्शन है।

श्लोक ७१ (स्वाभाविक-गुण की श्रेष्ठता – मणि एवं काच)

श्लोक

निरालोकेऽपि लोकेऽस्मिन् रासते तत्र पण्डिताः ।
जात्यस्य हि मणेरेव काचेन समता मता ॥७१॥

IAST

Nirāloke'pi loke'smin rāsate tatra paṇḍitāḥ |
Jātyasya hi maṇereva kācena samatā matā ||71||

शब्दार्थ
• निरालोके – बिना आलोक/प्रकाश (बिना सम्मान/आश्रय) के भी
• लोके – इस लोक/संसार में
• रासते – रमण/स्थित होते हैं
• पण्डिताः – विद्वान्/सज्जन
• जात्यस्य – जात्य (उत्कृष्ट/स्वाभाविक)
• मणेः – मणि/रत्न की
• एव – ही
• काचेन – काच (काँच) के साथ
• समता – समानता
• मता – मानी गई/कही गई ।

भावार्थ
इस संसार में विद्वान्/सज्जन (पण्डिताः) बिना किसी आलोक (आश्रय/सरंक्षण) के भी अपनी प्रतिभा से स्थित/रमण (रासते) करते हैं। क्योंकि स्वाभाविक (जात्य) मणि (रत्न) की तुलना काच (काँच) से कभी नहीं की जा सकती – अर्थात् सच्चा गुण (मणि) बाहरी सहारे (आलोक) के बिना भी चमकता है, जबकि काच (कृत्रिमता) आश्रय पर निर्भर है।

दार्शनिक विवेचन

यह *प्राकृत-गुण-प्रधानता* (Intrinsic Quality) का सिद्धान्त है – 'जात्यस्य मणेः' अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही उसका मूल्य है, बाह्य-आलम्बन (आलोक) नहीं। यह 'स्वधर्म' (भगवद्गीता ३.३५) के सिद्धान्त से मेल खाता है – स्वाभाविक-गुण ही श्रेष्ठ है, कृत्रिम-आभा (काच) नहीं।

आधुनिक संदर्भ

आज के कॉर्पोरेट जगत में 'ऑथेन्टिक लीडरशिप' (जात्य-मणि) बनाम 'नकली छवि' (काच) – सच्ची योग्यता एवं प्रतिभा (पण्डिताः) बिना बाहरी प्रचार (निरालोके) के भी पहचानी जाती है। कृत्रिम पैकेजिंग (काच) अस्थायी है।

श्लोक ७२ (कल्पतरु-तुल्य राजा का आश्रय एवं फल)

श्लोक

विश्राम्यन्ति महात्मानो यत्र कल्पतराविव ।
स श्लाघ्यं जीवति श्रीमान् सत्यं भाग्यफलं चिरम् ॥७२॥

IAST

Viśrāmyanti mahātmāno yatra kalpatarāviva |
Sa ślāghyaṃ jīvati śrīmān satyaṃ bhāgyaphalaṃ ciram ||72||

शब्दार्थ
- विश्राम्यन्ति – विश्राम/आश्रय पाते हैं
- महात्मानः – महात्मा/उदारचेता लोग
- यत्र – जहाँ (जिस राजा के पास)
- कल्पतराविव – कल्पवृक्ष के समान
- सः – वह (राजा)
- श्लाघ्यम् – श्लाघ्य/प्रशंसनीय रूप से
- जीवति – जीता है
- श्रीमान् – श्रीमान्/समृद्ध
- सत्यम् – सत्य/निश्चय ही
- भाग्यफलम् – भाग्य-फल
- चिरम् – चिरकाल/दीर्घकाल तक ।

भावार्थ
जिस राजा/नेता के पास (यत्र) महात्मा (उदार-बुद्धि) लोग कल्पवृक्ष के समान विश्राम (आश्रय/संरक्षण) पाते हैं, वह राजा श्रीमान् (समृद्ध) होकर प्रशंसनीय (श्लाघ्यं) रूप से दीर्घकाल (चिरम्) तक जीवित रहता है, और उसे निश्चय ही भाग्य-फल (समृद्धि) प्राप्त होता है। योग्यजनों को आश्रय देना ही राजा का वास्तविक भाग्य-वर्धन है।

दार्शनिक विवेचन

यह *सत्संग-आश्रय* (Shelter to the worthy) का फल है – 'कल्पतरु' केवल इच्छापूर्ति नहीं, बल्कि 'धर्म-वृक्ष' (आश्रयदाता) है। महात्माओं का आश्रय राजा को 'श्लाघ्य' (शाश्वत-कीर्ति) एवं 'श्री' (सम्पदा) प्रदान करता है। यह 'राजर्षि' (Raja-rishi) परम्परा का आधार है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक संगठनों में 'टैलेंट रिटेंशन' – प्रतिभाशाली कर्मचारी (महात्मानः) जिस कम्पनी (राजा) में आश्रय/विकास (कल्पतरु) पाते हैं, वह कम्पनी दीर्घकालीन समृद्धि (श्री/चिरम्) एवं प्रतिष्ठा (श्लाघ्यम्) प्राप्त करती है – यही 'एम्प्लॉयर ब्रांडिंग' है।

श्लोक ७३ (लक्ष्मी एवं नय-सम्पन्नों का विस्तार)

श्लोक

लक्ष्म्या लक्ष्मीवतां लोके विकासिन्या च किं नया ।
बन्धुभिः सुहृदैश्चैव वृद्धिं यान्ति भुज्यते ॥७३॥

IAST

Lakṣmyā lakṣmīvatāṃ loke vikāsinyā ca kiṃ nayā |
Bandhubhiḥ suhṛdaiścaiva vṛddhiṃ yānti bhujyate ||73||

शब्दार्थ

• लक्ष्म्या – लक्ष्मी/सम्पदा से
• लक्ष्मीवताम् – लक्ष्मीवान्/धनी/समृद्ध व्यक्तियों का
• लोके – संसार में
• विकासिन्या – विकासशील/बढ़ती हुई
• किम् – क्या (कहने की आवश्यकता)
• नया – नय (नीति/बुद्धि)
• बन्धुभिः – बन्धुओं/सम्बन्धियों के साथ
• सुहृदैः – सुहृद्/मित्रों/शुभचिन्तकों के साथ
• वृद्धिम् – वृद्धि/उन्नति
• यान्ति – प्राप्त करते हैं
• भुज्यते – (जो) भोगा/आनन्द लिया जाता है (राज्य/सम्पदा) ।

भावार्थ

संसार में लक्ष्मी (सम्पदा) एवं विकासशील नीति (नया) से युक्त समृद्ध (लक्ष्मीवताम्) व्यक्तियों के लिए क्या कहना? वे बन्धुओं एवं सुहृद् (मित्रों) के साथ वृद्धि (उन्नति) को प्राप्त होते हैं, और सम्पदा का भोग (भुज्यते) करते हैं। अर्थात् धन-नीति-संग – तीनों का समन्वय ही सफलता है।

दार्शनिक विवेचन

'लक्ष्म्या' एवं 'नया' – दोनों का समन्वय 'अर्थ' एवं 'नीति' का युगल है। 'बन्धुभिः सुहृदैः' – यह 'सामाजिक-पूँजी' (Social Capital) का प्रतीक है। अर्थशास्त्र के 'सहाय-सम्पत्ति' (Allies & Wealth) सिद्धान्त से मेल खाता है – अकेली सम्पदा नहीं, बल्कि नीति एवं मित्र-बल ही विकास-मूल हैं।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक बिजनेस में 'रिलेशनशिप कैपिटल' (बन्धु-सुहृद्), 'फाइनेंशियल कैपिटल' (लक्ष्मी) एवं 'स्ट्रैटेजिक माइंडसेट' (नया) – तीनों से युक्त उद्यमी ही दीर्घकालीन वृद्धि (वृद्धि) एवं बाजार-सफलता (भुज्यते) प्राप्त करता है।

श्लोक ७४ (आपत्ति में आप्त-परीक्षितों का प्रयोग)

श्लोक

आपत्स्वारम्भयोः स्वेषु कुर्यादाप्तान् परीक्षितान् ।
आददीत धनं तेभ्यो भास्वान् हि रश्मीनिव ॥७४॥

IAST

Āpatsvārambhayoḥ sveṣu kuryādāptān parīkṣitān |
Ādadīta dhanaṃ tebhyo bhāsvān hi raśmīniva ||74||

शब्दार्थ
• आपत्सु – आपत्ति/संकट में
• आरम्भयोः – आरम्भ/उपक्रमों में
• स्वेषु – अपने (कार्यों) में
• कुर्यात् – करे/नियुक्त करे
• आप्तान् – आप्त/विश्वस्त व्यक्तियों को
• परीक्षितान् – परीक्षित (जाँचे हुए) को
• आददीत – ग्रहण/संग्रह करे
• धनम् – धन/कोष
• तेभ्यः – उन (आप्तजनों) से
• भास्वान् – भास्वान् (सूर्य)
• रश्मीन् – रश्मियों/किरणों को
• इव – समान ।

भावार्थ
संकट (आपत्सु) एवं अपने प्रारम्भिक कार्यों (आरम्भयोः) में राजा/शासक को जाँचे-परखे (परीक्षितान्) एवं विश्वस्त (आप्तान्) व्यक्तियों को ही नियुक्त (कुर्यात्) करना चाहिए, तथा उन्हीं (आप्तजनों) से धन-संग्रह (आददीत) करना चाहिए – जैसे सूर्य (भास्वान्) अपनी किरणों (रश्मि) को ग्रहण करता है। संकट में अपनों का ही सहारा लेना चाहिए।

दार्शनिक विवेचन

'आप्त' – विश्वास-पात्र, 'परीक्षित' – कसौटी पर खरा। यह 'आपद्धर्म' (Crisis Management) का मूल है – जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों को ही संजोकर रखता है (विकीर्ण नहीं करता), वैसे ही संकट में शासक को अपने सिद्ध-विश्वस्त मण्डल (Inner Circle) पर ही निर्भर रहना चाहिए।

आधुनिक संदर्भ

आज के कॉर्पोरेट संकट-प्रबंधन में 'ट्रस्टेड कोर टीम' (आप्त/परीक्षित) का ही सहारा लिया जाता है – वित्तीय-संकट (आपत्) या नए प्रोजेक्ट-आरम्भ (आरम्भ) में, कम्पनी अपने सिद्ध-विश्वस्त कर्मचारियों/भागीदारों (रश्मि) से ही संसाधन जुटाती है।

श्लोक ७५ (तज्ज्ञ, शुचि, सत्त्व-सम्मतों की नियुक्ति)

श्लोक

अभ्यस्तकर्मणस्तज्ज्ञान् शुचीन् सत्त्वसम्मतान् ।
कुर्यादुद्योगसम्पन्नान् व्यक्तान् सर्वकर्मसु ॥७५॥

IAST

Abhyastakarmaṇastajjñān śucīn sattvasammatān |
Kuryādudyogasampannān vyaktān sarvakarmasu ||75||

शब्दार्थ
• अभ्यस्तकर्मणः – जिन्होंने कर्मों का अभ्यास/अनुभव किया हो
• तज्ज्ञान् – तत्-ज्ञ (उस कार्य के ज्ञाता)
• शुचीन् – शुचि/पवित्र/ईमानदार
• सत्त्वसम्मतान् – सत्त्व (सात्विकगुण) से सम्मत/स्वीकृत
• कुर्यात् – करे/नियुक्त करे
• उद्योगसम्पन्नान् – उद्योग (प्रयत्न) से सम्पन्न
• व्यक्तान् – व्यक्त/स्पष्ट-बुद्धि/प्रखर
• सर्वकर्मसु – समस्त कार्यों में ।

भावार्थ
राजा/शासक को उन व्यक्तियों को समस्त कार्यों (सर्वकर्मसु) में नियुक्त (कुर्यात्) करना चाहिए, जिन्हें कार्य-अभ्यास (अभ्यस्तकर्मणः) हो, जो उस कार्य के तज्ज्ञ (विशेषज्ञ) हों, जो शुचि (ईमानदार/शुद्ध) हों, जो सत्त्व-गुण (सात्विक-प्रकृति) से सम्मत हों, तथा जो उद्योग-सम्पन्न (परिश्रमी) एवं व्यक्त (स्पष्टवादी/प्रखर-बुद्धि) हों। ये पाँच गुण – अनुभव, ज्ञान, ईमानदारी, सात्विकता, उद्यम – आदर्श कर्मचारी/मंत्री की कसौटी हैं।

दार्शनिक विवेचन

'सत्त्वसम्मतान्' – सांख्य-योग के 'सत्त्वगुण' (शुद्धता, ज्ञान, आनन्द) से युक्त व्यक्ति। 'व्यक्तान्' – अर्थात् 'अव्यक्त' (गूढ़/चालाक) नहीं, बल्कि 'स्पष्ट-नीति' वाला। यह चाणक्य-नीति का 'मन्त्रि-परीक्षा' मापदण्ड है – ज्ञान, अनुभव, शौच, सत्त्व, उद्योग – पंच-लक्षण।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक HR चयन-प्रक्रिया में 'एक्सपीरियंस' (अभ्यस्त), 'एक्सपर्टीज़' (तज्ज्ञ), 'इंटीग्रिटी' (शुचि), 'कल्चरल फिट' (सत्त्वसम्मत) एवं 'प्रोएक्टिवनेस' (उद्योग/व्यक्त) – ये पाँचों गुण किसी भी पद (सर्वकर्मसु) के लिए आवश्यक हैं।

श्लोक ७६ (योग्य-स्थान में नियोग एवं इन्द्रिय-दमन)

श्लोक

यो यद्यदस्ति विजानाति तं तत्र विनियोजयेत् ।
अक्षेषु विषयप्राप्तिरिन्द्रियाणां दमेन च ॥७६॥

IAST

Yo yadyadasti vijānāti taṃ tatra viniyojayet |
Akṣeṣu viṣayaprāptirindriyāṇām damena ca ||76||

शब्दार्थ

- यः – जो (व्यक्ति)
- यत् यत् – जो-जो (विषय/कार्य)
- अस्ति – है
- विजानाति – (उसे) अच्छी तरह जानता है
- तम् – उस (व्यक्ति) को
- तत्र – उस (कार्य) में
- विनियोजयेत् – नियुक्त/विनियोजित करे
- अक्षेषु – इन्द्रियों/विषयों में
- विषयप्राप्तिः – विषयों की प्राप्ति/उपभोग
- इन्द्रियाणाम् – इन्द्रियों का
- दमेन – दमन/निग्रह से
- च – तथा ।

भावार्थ

राजा/शासक जो व्यक्ति जिस-जिस कार्य को जानता है, उसे उसी कार्य में नियुक्त (विनियोजयेत्) करे। (इसके अतिरिक्त) इन्द्रियों के दमन (दमेन) द्वारा ही विषयों की प्राप्ति (उपभोग/सफलता) होती है – अर्थात् योग्य-नियुक्ति (सही आदमी सही काम) एवं आत्म-संयम (इन्द्रिय-दम) – ये दोनों सफलता के आधार हैं।

दार्शनिक विवेचन

प्रथमार्ध – 'योग्यता-अनुसार-नियोग' (Right person for right job) – यह कौटिल्य-अर्थशास्त्र का 'मन्त्रि-व्यवसाय' सिद्धान्त है। द्वितीयार्ध – 'इन्द्रिय-दम' – यह योग-दर्शन का 'प्रत्याहार' (Sense withdrawal) है, जो बताता है कि विषय-सुख (प्राप्ति) अनियंत्रित भोग से नहीं, बल्कि संयम (दम) से मिलता है।

आधुनिक संदर्भ

आज का 'प्रोजेक्ट मैनेजमेंट' – 'राइट स्किल-सेट' (यो यद्विजानाति) का मिलान सही रोल (तत्र) से करना – पहला सूत्र है। साथ ही, 'फोकस' एवं 'सेल्फ-कंट्रोल' (इन्द्रिय-दम) ही अत्यधिक सूचनाओं (विषय) के युग में सफलता (प्राप्ति) की कुंजी है।

श्लोक ७७ (कोशागार-अभियोग एवं आय-व्यय-निरीक्षण)

श्लोक

कोशागारेऽभियुक्तः स्याद्द्रव्यं हि जीवितम् ।
नाव्ययं च व्ययं चैव वीक्षेत चान्वहम् ॥७७॥

IAST

Kośāgāre'bhiyuktaḥ syāddravyaṃ hi jīvitam |
Nāvyayaṃ ca vyayaṃ caiva vīkṣeta cānvaham ||77||

शब्दार्थ

- कोशागारे – कोशागार/खजाने/वित्त में
- अभियुक्तः – अभियुक्त/निपुण/सावधान
- स्यात् – हो
- द्रव्यम् – धन/कोष
- जीवितम् – जीवन/प्राण (राज्य का) है
- न – नहीं
- आव्ययम् – आय (अव्यय = आय? 'अव्यय' = खर्च न होने वाला, यहाँ 'आय' ही उचित है, 'आय' एवं 'व्यय')
- व्ययम् – व्यय/खर्च
- वीक्षेत – निरीक्षण/अवलोकन करे
- अन्वहम् – प्रतिदिन/दैनिक ।

भावार्थ

राजा/शासक को कोशागार (खजाना/वित्त-विभाग) में अत्यन्त सावधान (अभियुक्त) रहना चाहिए, क्योंकि द्रव्य (धन) ही राज्य का जीवन (प्राण) है। उसे प्रतिदिन (अन्वहम्) अपनी आय (आय) एवं व्यय (खर्च) का निरीक्षण (वीक्षेत) करना चाहिए – अर्थात् न तो अत्यधिक खर्च करे (व्यय) और न ही अनियन्त्रित संचय (आय) करे।

दार्शनिक विवेचन

'कोश' – अर्थशास्त्र का 'सप्तांग' में एक अंग। 'द्रव्यं जीवितम्' – यह 'अर्थ-प्राण-सिद्धान्त' है – धन के बिना राज्य निर्जीव है। 'आय-व्यय-वीक्षा' – यह 'लेखा-शास्त्र' (Accounting) का प्रारम्भिक रूप है, जो मनुस्मृति के 'कोशाध्यक्ष' (Treasurer) के कर्तव्य से मेल खाता है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक 'फाइनेंशियल मैनेजमेंट' एवं 'CFO' (Chief Financial Officer) का मूल कार्य – कोष (कोशागार) की सुरक्षा, दैनिक आय-व्यय (नाव्यय-व्यय) का लेखा-जोखा (वीक्षेत) – यही सिद्धान्त है। बिना डेली कैश-फ्लो मॉनिटरिंग (अन्वहम्) के कोई कम्पनी सफल नहीं होती।

श्लोक ७८ (राज्य-संवर्धन के सातों उपाय)

श्लोक

कृषिर्वाणिज्यपथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम् ।
खन्याकरधनादानं शून्यानां च निवेशनम् ॥७८॥

IAST

Kṛṣirvāṇijyapatho durgaṃ setuḥ kuñjarabandhanam |
Khanyākaradhanādānaṃ śūnyānāṃ ca niveśanam ||78||

शब्दार्थ

- कृषिः – कृषि/खेती
- वाणिज्यपथः – वाणिज्य-पथ/व्यापार-मार्ग
- दुर्गम् – दुर्ग/किला (सुरक्षा-व्यवस्था)
- सेतुः – सेतु/पुल (बाँध/सिंचाई)
- कुञ्जरबन्धनम् – कुञ्जर/हाथी-बन्धन (हाथी-प्रशिक्षण एवं सेना)
- खनि – खानि/खदान
- आकर – आकर/धातु-खान
- धनादानम् – धन-आदान/कर-संग्रह
- शून्यानाम् – शून्य/बंजर/खाली भूमि का
- निवेशनम् – निवेश/बसाव/विकास ।

भावार्थ

राजा/शासक को सात प्रकार के आर्थिक-सैन्य-संवर्धन-उपाय करने चाहिए – (१) कृषि, (२) व्यापार-मार्ग (वाणिज्यपथ), (३) दुर्ग (सुरक्षा), (४) सेतु-बाँध (सिंचाई), (५) हाथी-प्रशिक्षण (युद्ध-सामग्री), (६) खान-आकर (धातु/खनिज) एवं कर-संग्रह (धनादान), तथा (७) बंजर/रिक्त भूमि (शून्यानाम्) पर नवीन निवेश/बसाव। ये राज्य-सम्पन्नता के सात स्तम्भ हैं।

दार्शनिक विवेचन

यह *सप्त-प्रकृति-विकास-नीति* (Seven-fold economic development) है – कौटिल्य के 'अर्थ-प्रकृतियाँ' (कोश, दुर्ग, बल, आदि) का विस्तृत रूप। 'शून्यानां निवेशनम्' – उजाड़ भूमि में नगर-बसाना – यह 'उपनिवेश-निर्माण' (Colonization) का प्राचीन सूत्र है, जो राज्य के विस्तार एवं समृद्धि का आधार था।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक 'इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट' – कृषि, व्यापार-मार्ग (रोड/रेल), सुरक्षा (दुर्ग), सिंचाई (सेतु), रक्षा-उपकरण (कुञ्जर/हाथी), खनन (आकर), एवं 'स्मार्ट-सिटी' (शून्य-निवेश) – ये सातों आज के 'आर्थिक-संवर्धन' के ही आधुनिक रूप हैं, जिन्हें सरकारें प्राथमिकता देती हैं।

श्लोक ७९ (अटवी-गो-भूमि-विकास एवं स्वच्छ-वृत्ति)

श्लोक

अटवीगोभूमिं साधु स्वच्छवृत्तौ विवर्धयेत् ।
जीवनार्थमिदं चैव कर्तव्यं करणादिभिः ॥७९॥

IAST

Aṭavīgobhūmiṃ sādhu svacchavṛttau vivardhayet |
Jīvanārthamidaṃ caiva kartavyaṃ karaṇādibhiḥ ||79||

शब्दार्थ

- अटवी – अटवी/वन/जंगल
- गो – गो/गाय/पशुधन
- भूमिम् – भूमि/क्षेत्र
- साधु – साधु/उचित रूप से
- स्वच्छवृत्तौ – स्वच्छ-वृत्ति (शुद्ध/पर्यावरण-अनुकूल आचरण) में
- विवर्धयेत् – विकसित/बढ़ाए
- जीवनार्थम् – जीविका/आजीविका के लिए
- इदम् – यह (सब)
- कर्तव्यम् – कर्तव्य है
- करणादिभिः – करण (साधन/मंत्री/अधिकारी) आदि के द्वारा ।

भावार्थ

राजा/शासक को अटवी (वन-सम्पदा), गो-पशुधन (पशुपालन) एवं भूमि (कृषि-भूमि) – इन तीनों को उचित (साधु) एवं स्वच्छ-वृत्ति (पर्यावरण-अनुकूल/न्यायसंगत नीति) से विकसित (विवर्धयेत्) करना चाहिए। यह सब प्रजा की जीविका (जीवनार्थम्) के लिए अपने मंत्रियों/अधिकारियों (करणादिभिः) के द्वारा कर्तव्य-रूप में किया जाना चाहिए।

दार्शनिक विवेचन

'अटवी-गो-भूमि' – तीन प्राकृतिक-संसाधन (वन, पशु, भूमि) – यह 'पृथ्वी-पूजा' (Eco-centric philosophy) का प्राचीन रूप है। 'स्वच्छवृत्तौ' – अर्थात् 'अहिंसा' एवं 'पर्यावरण-सन्तुलन'। 'करणादिभिः' – यह 'प्रत्यायोजन' (Delegation) को दर्शाता है – राजा स्वयं नहीं, मंत्रियों द्वारा यह कार्य कराए।

आधुनिक संदर्भ

आज का 'सतत विकास' (Sustainable Development) एवं 'हरित-अर्थव्यवस्था' – वन (अटवी), पशुधन (गो), भूमि-संरक्षण – इन्हीं पर आधारित है। 'स्वच्छवृत्ति' – यह 'क्लीन एनर्जी' एवं 'इको-फ्रेंडली पॉलिसी' का प्राचीन नाम है। 'करणादिभिः' – प्रशासनिक तंत्र (करण/अधिकारी) के माध्यम से इन्हें लागू करना आज का 'शासन-प्रशासन' है।

श्लोक ८० (क्षीण-आय में भी पण्योपजीवियों का संरोध-त्याग – समापन)

श्लोक

तथा यथा प्रवर्तेत वृत्त्या क्षीणोऽपि पार्थिवः ।
तस्यास्यानां संरोधं न कुर्यात्पण्योपजीविनाम् ॥८०॥

IAST

Tathā yathā pravarteta vṛttyā kṣīṇo'pi pārthivaḥ |
Tasyāsyānāṃ saṃrodhaṃ na kuryātpaṇyopajīvinām ||80||

शब्दार्थ

- तथा – इस प्रकार
- यथा – जैसे
- प्रवर्तेत – प्रवृत्त/आचरण करे
- वृत्त्या – आजीविका/व्यवहार/नीति से
- क्षीणः – क्षीण/दरिद्र/आय-हीन
- अपि – भी
- पार्थिवः – पार्थिव/राजा
- तस्य – उस (राजा) के
- आस्यानाम् – आस्य (मुख/मार्ग/स्थान) का
- संरोधम् – संरोध/अवरोध/दमन
- न कुर्यात् – न करे
- पण्योपजीविनाम् – पण्य (व्यापार/बाजार) से जीविका करने वालों (व्यापारियों) का ।

भावार्थ

राजा/शासक को चाहिए कि वह अपनी नीति (वृत्ति) इस प्रकार (तथा) चलाए (प्रवर्तेत) कि यदि वह आर्थिक रूप से क्षीण (दरिद्र) भी हो (क्षीणोऽपि), तो भी वह व्यापारियों/बाज़ार-निर्भर लोगों (पण्योपजीविनाम्) के मार्गों/आजीविका (आस्यानाम्) का अवरोध/संरोध (संरोधम्) न करे। अर्थात् संकट में भी कर-वृद्धि या व्यापार-बाधा न करें; जन-आजीविका की रक्षा सर्वोपरि है – **यही सम्पूर्ण सर्ग का अन्तिम सन्देश है।**

दार्शनिक विवेचन

'क्षीणोऽपि' – यहाँ 'अपि' (होते हुए भी) अत्यन्त महत्वपूर्ण है – राजा के अपने संकट को भी जन-आजीविका (पण्योपजीवी) पर भारी नहीं डालना चाहिए। यह 'अर्थशास्त्र' के 'कर-प्रजा-रक्षा' (Protect taxpayers) सिद्धान्त का चरम है। 'संरोधम्' – बाजार-व्यवस्था पर अत्यधिक कर, जबरन अधिग्रहण, या प्रतिबन्ध – यह 'अधर्म' है। यह 'स्वामी-अनुजीवी' (शासक-प्रजा) के परस्पर-हित का सर्वोच्च सूत्र है – राजा का धर्म प्रजा-जीविका की रक्षा है, चाहे उसका अपना कोष कितना भी क्षीण क्यों न हो।

आधुनिक संदर्भ

यह सम्पूर्ण कामन्दकीय-सर्ग का **सर्वोत्कृष्ट आधुनिक सन्देश** है – 'मंदी' (क्षीणता) में भी सरकार/कम्पनी (पार्थिव) को व्यापारियों/एसएमई (पण्योपजीवी) पर अत्यधिक कर/ब्याज/अवरोध (संरोध) नहीं लगाना चाहिए। आज के 'बिजनेस-फ्रेंडली पॉलिसी' एवं 'कर-राहत' (Tax relief) का यही प्राचीन एवं शाश्वत सिद्धान्त है – "जन-आजीविका की रक्षा ही राजा/नेता का परम धर्म है।"

श्लोक ८१ (वृक्ष-उपमा – कण्टक-शाखा का निष्कासन)

श्लोक

यथा वृक्षे निपुणः शस्यं कण्टकशाखया ।
फलाय लगुडः कार्यस्तद्वद्धर्म्यमिदं जगत् ॥८१॥

IAST

Yathā vṛkṣe nipuṇaḥ śasyaṃ kaṇṭakaśākhayā |
Phalāya laguḍaḥ kāryastadvaddharmyamidaṃ jagat ||81||

शब्दार्थ
• यथा – जैसे
• वृक्षे – वृक्ष में
• निपुणः – निपुण/कुशल (माली)
• शस्यम् – (शस्य = छेदन/कर्तन? या शस्य = अन्न/फसल, यहाँ 'शाखा-कर्तन' ही अर्थ है) काटता/छाँटता है
• कण्टकशाखया – कण्टक-शाखा (काँटेदार डाली) के द्वारा
• फलाय – फल के लिए
• लगुडः – लगुड/डंडा/यष्टि (शासन-दण्ड)
• कार्यः – करना चाहिए
• तद्वत् – उसी प्रकार
• धर्म्यम् – धर्म-युक्त
• जगत् – यह संसार/राज्य ।

भावार्थ
जैसे कोई कुशल माली वृक्ष में काँटेदार डालियों को (कण्टकशाखया) काट-छाँट कर फल प्राप्त करता है, वैसे ही इस धर्ममय संसार/राज्य में राजा को भी दुष्टों (कण्टक) को दण्ड (लगुड) द्वारा नियन्त्रित करके फल (समृद्धि/व्यवस्था) प्राप्त करनी चाहिए। कठोरता भी धर्म-साधन हो सकती है।

दार्शनिक विवेचन

यह 'दण्डनीति' का औचित्य है – 'कण्टक' दुर्जन हैं, 'लगुड' राजदण्ड है, 'फल' राज्य-समृद्धि है। यह अर्थशास्त्र का 'दण्ड' सिद्धान्त है – बिना दण्ड के शासन असंभव है, जैसे बिना छँटाई के वृक्ष फल नहीं देता।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक प्रशासन में अपराधियों/भ्रष्टाचारियों (कण्टक) के विरुद्ध कठोर कानून (लगुड) आवश्यक है। यह 'शासन-व्यवस्था' एवं 'विधि-शासन' (Rule of Law) का मूलमन्त्र है।

श्लोक ८२ (प्रजा को पाँच प्रकार का भय)

श्लोक

अयुक्तेभ्यः प्रमत्तेभ्यः परेभ्यो राजवल्लभात् ।
पृथिवीपतिना चैव प्रजानां पञ्चधा भयम् ॥८२॥

IAST

Ayuktebhyaḥ pramattebhyaḥ parebhyo rājavallabhāt |
Pṛthivīpatinā caiva prajānāṃ pañcadhā bhayam ||82||

शब्दार्थ

- अयुक्तेभ्यः – अयुक्त (अयोग्य/अनुपयुक्त) अधिकारियों से
- प्रमत्तेभ्यः – प्रमत्त (असावधान/लापरवाह) अधिकारियों से
- परेभ्यः – परेभ्य (शत्रुओं) से
- राजवल्लभात् – राज-वल्लभ (राजा के प्रिय/विश्वस्त) जनों से
- पृथिवीपतिना – राजा (पृथिवीपति) के द्वारा
- च – तथा
- प्रजानाम् – प्रजा/जनता को
- पञ्चधा – पाँच प्रकार का
- भयम् – भय/खतरा होता है ।

भावार्थ

प्रजा को पाँच प्रकार के स्रोतों से भय उत्पन्न होता है – (१) अयोग्य अधिकारी, (२) लापरवाह अधिकारी, (३) शत्रु, (४) राजा के प्रिय/विश्वासी व्यक्ति, तथा (५) स्वयं राजा। इन पाँचों से प्रजा सदैव आतंकित रहती है; अतः राजा को इन्हें नियंत्रित करना चाहिए।

दार्शनिक विवेचन

यह 'अर्थशास्त्र' का 'प्रजा-भय-निदान' है – शासन-व्यवस्था के पाँच घातक तत्त्व। 'राजवल्लभ' (अंतरंग-मण्डल) भी भय का कारण बनते हैं – यह 'राज-कुटुम्ब' (Inner Court) की दुर्बलता को दर्शाता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के लोकतंत्र में भी नागरिकों को भय होता है – भ्रष्ट नौकरशाही (अयुक्त), लापरवाह पुलिस (प्रमत्त), विदेशी शत्रु (पर), राजनेताओं के करीबी (राजवल्लभ), तथा स्वयं सरकार (पृथिवीपति) से। यही सुशासन की चुनौती है।

श्लोक ८३ (कर-संग्रह एवं त्रिवर्ग-वृद्धि)

श्लोक

पञ्चप्रकारमप्येतत्पापं नृपतेर्मतम् ।
आददीत धनं काले त्रिवर्गपरिवृद्धये ॥८३॥

IAST

Pañcaprakāramapyetatpāpaṃ nṛpatermatam |
Ādadīta dhanaṃ kāle trivargaparivṛddhaye ||83||

शब्दार्थ

- पञ्चप्रकारम् – पाँच प्रकार का
- अपि – भी
- एतत् – यह
- पापम् – पाप/दोष (कर-संग्रह में)
- नृपतेः – राजा का
- मतम् – मत/विचार
- आददीत – ग्रहण/संग्रह करे
- धनम् – धन/कर
- काले – उचित समय पर
- त्रिवर्ग – त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम)
- परिवृद्धये – परिवृद्धि/वृद्धि के लिए ।

भावार्थ

राजा का यह मत है कि पाँच प्रकार का पाप (अनुचित कर-संग्रह) भी होता है; परन्तु राजा को धन (कर) का संग्रह उचित समय (काले) पर करना चाहिए, जिससे धर्म, अर्थ एवं काम – तीनों (त्रिवर्ग) की वृद्धि हो। कर-संग्रह का उद्देश्य जन-कल्याण एवं राज्य-विस्तार है।

दार्शनिक विवेचन

'त्रिवर्ग' – मानव-जीवन के तीन पुरुषार्थ। 'पापम्' का अर्थ यहाँ 'अनिष्ट-प्रभाव' है – असमय या अत्यधिक कर लेना पाप है; परन्तु युक्त-काल में लिया गया कर त्रिवर्ग-साधक है। यह 'अर्थशास्त्र' का 'कोश-वृद्धि-सिद्धान्त' है।

आधुनिक संदर्भ

आज का 'कर-संग्रह' (Taxation) – समय पर (काले) एवं उचित दर पर लिया गया कर, सरकार को धर्म (सामाजिक-न्याय), अर्थ (आर्थिक-विकास) एवं काम (जन-सुख) के लिए खर्च करने योग्य बनाता है। यही 'सकल घरेलू उत्पाद' (GDP) वृद्धि का मूल है।

श्लोक ८४ (वृक्ष-प्रजा उपमा – पालन, छेदन, सिंचन, आदान)

श्लोक

यथा वृक्षः पाल्यते छिद्यते च तथा प्रजा ।
सिच्यते चीयते वापि लता पुष्पफलार्थिना ॥८४॥

IAST

Yathā vṛkṣaḥ pālyate chidyate ca tathā prajā |
Sicyate cīyate vāpi latā puṣpaphalārthinā ||84||

शब्दार्थ

- यथा – जैसे
- वृक्षः – वृक्ष
- पाल्यते – पालन/रक्षा किया जाता है
- छिद्यते – छेदन/छँटाई किया जाता है
- तथा – वैसे ही
- प्रजा – प्रजा
- सिच्यते – सिंचन/पानी दिया जाता है
- चीयते – चयन/संचय/कर-संग्रह किया जाता है
- वा – अथवा
- लता – लता/बेल
- पुष्पफलार्थिना – पुष्प एवं फल की इच्छा रखने वाले (माली/राजा) द्वारा ।

भावार्थ

जैसे माली फूल-फल पाने के लिए वृक्ष/लता की रक्षा (पालन), छँटाई (छेदन), सिंचन (पानी), एवं संचय (फल-तोड़) करता है, वैसे ही राजा अपनी प्रजा की रक्षा, अनुशासन (नियंत्रण), संसाधन-प्रदान एवं कर-ग्रहण करता है। प्रजा-पालन एक कला है।

दार्शनिक विवेचन

यह 'सप्तांग-न्याय' का वृक्ष-रूपक है – राज्य को निरन्तर देखभाल की आवश्यकता है। 'छिद्यते' (छँटाई) अर्थात् दुष्ट-तत्त्वों का निष्कासन, 'सिच्यते' अर्थात् जन-कल्याण-योजनाएँ, 'चीयते' अर्थात् कर-संग्रह। यह एक 'जैविक-व्यवस्था' (Organic System) है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक सरकार/कम्पनी (राजा) प्रजा/ग्राहकों (वृक्ष) की सुरक्षा (पालन), नियमन (छेदन), सुविधाएँ (सिंचन) एवं राजस्व-संग्रह (चयन) – चारों कार्य इसी उपमा पर आधारित हैं। यही 'स्टेकहोल्डर थ्योरी' है।

श्लोक ८५ (कोमल कर-संग्रह – मधुकर-नीति)

श्लोक

आदद्यादुपचितान् साधु दुर्जनानिव ।
आमुञ्चेच्च वणिग्भिर्वा भावैर्मृद्रू पता ॥८५॥

IAST

Ādadyādupacitān sādhu durjanāniva |
Āmuñcecca vaṇigbhirvā bhāvairmṛdū patā ||85||

शब्दार्थ

- आदद्यात् – ग्रहण/संग्रह करे
- उपचितान् – उपचित (संचित/बढ़ा हुआ) कर/धन
- साधु – साधु/उचित रीति से
- दुर्जनानिव – दुर्जनों को (निष्कासित) करने के समान
- आमुञ्चेत् – (कर-भार) मोचन/ढीला करे / (व्यापारियों पर) भरोसा करे
- वणिग्भिः – व्यापारियों/वणिकों से
- वा – अथवा
- भावैः – भाव/सद्भाव/सौहार्द से
- मृदू – मृदु/कोमल
- पता – (यहाँ) पता = प्रजापालन? या 'पतिः' (राजा) – 'मृदूपतिः' = कोमल-नीति वाला राजा ।

भावार्थ

राजा को उपचित (संचित/उचित) कर को साधु (उचित विधि) से ग्रहण करना चाहिए, जैसे कि दुर्जनों का दमन करता है (परन्तु उनके समान कठोर न हो)। उसे व्यापारियों (वणिकों) के साथ कोमल भाव (मृदूभाव) से व्यवहार करना चाहिए। कर-संग्रह में कठोरता नहीं, सहृदयता होनी चाहिए।

दार्शनिक विवेचन

'दुर्जनानिव' – दुर्जनों से धन लेने में कठोरता, परन्तु सज्जन व्यापारियों से कोमलता – यह 'विवेक-पूर्ण करनीति' (Discriminatory Taxation) है। 'मृदूपतिः' – कोमल-हृदय राजा – यह 'कामन्दकि' की 'लोक-रञ्जक-नीति' है, जो अत्याचार-मुक्त शासन का सूत्र देती है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक वित्त-नीति में 'प्रगतिशील कर' (Progressive Tax) – अमीरों (दुर्जन सदृश) से अधिक, परन्तु व्यापारियों/उद्यमियों (वणिक) के लिए सरलीकृत एवं सौम्य कर-प्रणाली (मृदूभाव) – 'ईज ऑफ डूइंग बिजनेस' का यही प्राचीन सूत्र है।

श्लोक ८६ (अल्प-अपहार-पापी राजा का विनाश)

श्लोक

स्वल्पमप्यपहर्तुं ये पापाः पृथिवीपतयः ।
ते वृक्षा इव दह्यन्ते पापं मूर्ध्नि वेतसाः ॥८६॥

IAST

Svalpamapyapahartuṃ ye pāpāḥ pṛthivīpatayaḥ |
Te vṛkṣā iva dahyante pāpaṃ mūrdhni vetasāḥ ||86||

शब्दार्थ

- स्वल्पम् – थोड़ा सा
- अपि – भी
- अपहर्तुम् – हरण/चोरी/अन्यायपूर्ण लेने के लिए
- ये – जो
- पापाः – पापी
- पृथिवीपतयः – राजा/शासक
- ते – वे
- वृक्षाः – वृक्ष
- इव – समान
- दह्यन्ते – जलाए/नष्ट किए जाते हैं
- पापम् – पाप
- मूर्ध्नि – मस्तक/सिर पर
- वेतसाः – वेतस (बेंत/नरकट) – (अर्थात् सिर पर पाप-बोझ) ।

भावार्थ

जो राजा प्रजा का थोड़ा सा (स्वल्पम्) भी धन अन्यायपूर्वक हरण (अपहर्तुम्) करते हैं, वे पापी राजा उस पाप-बोझ (मूर्ध्नि पापम्) के कारण वृक्षों की भाँति (जलकर) नष्ट हो जाते हैं। अल्प-अत्याचार भी राजा के पतन का कारण बनता है – कर-चोरी/भ्रष्टाचार असहनीय है।

दार्शनिक विवेचन

'स्वल्पमपि' – थोड़ा-सा भी अन्याय अक्षम्य है – यह 'सूक्ष्म-पाप-निषेध' (Prohibition of petty corruption) है। 'वेतसाः' (नरकट) पानी में उगता है, परन्तु आग में झुलस जाता है – राजा भी जन-धन (पानी) पर निर्भर है, फिर भी यदि वह जनता का हरण करे तो स्वयं नष्ट हो जाता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'भ्रष्टाचार-निषेध' (Anti-corruption) – थोड़ी-सी रिश्वत/गबन भी राजनीतिक-पतन (दह्यन्ते) का कारण बनती है। 'स्वल्प' भ्रष्टाचार को 'ज़ीरो-टॉलरेंस' (शून्य-सहिष्णुता) की नीति इसी श्लोक पर आधारित है – पाप (भ्रष्टाचार) सिर पर (प्रतिष्ठा-हानि) बैठता है।

श्लोक ८७ (कोश-रक्षा एवं त्रिवर्ग-व्यय)

श्लोक

संवृणुयात् सदा कोषमापदस्तज्ज्ञैरधिष्ठितम् ।
काले चास्य व्ययं कुर्यात् त्रिवर्गपरिवृद्धये ॥८७॥

IAST

Saṃvṛṇuyāt sadā koṣamāpadastajjñairadhiṣṭhitam |
Kāle cāsya vyayaṃ kuryāt trivargaparivṛddhaye ||87||

शब्दार्थ

- संवृणुयात् – संवरण/रक्षा/बचाव करे
- सदा – सदा
- कोषम् – कोष/खजाना
- आपदः – आपत्ति/संकट से
- तज्ज्ञैः – तत्-ज्ञ (उसके ज्ञाता/विशेषज्ञ) अधिकारियों के द्वारा
- अधिष्ठितम् – अधिष्ठित/नियंत्रित/प्रशासित
- काले – उचित समय पर
- अस्य – इस (कोष) का
- व्ययम् – व्यय/खर्च
- कुर्यात् – करे
- त्रिवर्ग – धर्म, अर्थ, काम
- परिवृद्धये – परिवृद्धि/वृद्धि के लिए ।

भावार्थ

राजा को सदा अपने कोष (धन-भण्डार) की आपत्तियों/संकटों से रक्षा करनी चाहिए, और वह कोष विशेषज्ञों (तज्ज्ञैः) द्वारा संचालित होना चाहिए। तथा उस कोष का व्यय (खर्च) उचित समय (काले) पर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की वृद्धि के लिए करना चाहिए। बचत एवं युक्त-व्यय – दोनों आवश्यक हैं।

दार्शनिक विवेचन

'कोष' – राज्य-सप्तांग का एक अंग। 'आपदः' – सेना, दुर्भिक्ष, विद्रोह आदि से रक्षा। 'तज्ज्ञैः' – विशेषज्ञ प्रशासन (Expert Administration) – यह 'अर्थशास्त्र' का 'कोशाध्यक्ष' (Treasurer) का कर्तव्य है। 'त्रिवर्गार्थ' – केवल संचय नहीं, सार्थक खर्च ही विकास है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक 'राजकोषीय नीति' (Fiscal Policy) – रिज़र्व बैंक (तज्ज्ञ) द्वारा कोष का प्रबंधन, एवं समय पर बजट-व्यय (काले व्यय) – जैसे सब्सिडी, बुनियादी ढाँचा (धर्म-अर्थ-काम) – यही सतत-विकास का आधार है।

श्लोक ८८ (धर्मार्थ क्षीण-कोष भी शोभायमान)

श्लोक

धर्मार्थं क्षीणकोषस्य कृशत्वमपि शोभते ।
सुरैः पूतस्य भेषस्य शरद्वच्छिशिरो हि सः ॥८८॥

IAST

Dharmārthaṃ kṣīṇakoṣasya kṛśatvamapi śobhate |
Suraiḥ pūtasya bheṣasya śaradvacchiśiro hi saḥ ||88||

शब्दार्थ

- धर्मार्थम् – धर्म के लिए
- क्षीणकोषस्य – क्षीण/दरिद्र हुए कोष वाले (राजा) का
- कृशत्वम् – कृशता/दुबलापन/अल्प-कोष
- अपि – भी
- शोभते – शोभायमान/प्रशंसनीय होता है
- सुरैः – देवताओं/सज्जनों के द्वारा
- पूतस्य – पूत/शुद्ध/पवित्र किए गए
- भेषस्य – भेष/स्वरूप/प्रयास का
- शरद् – शरद् ऋतु
- वत् – समान
- शिशिरः – शिशिर/सर्दी/शीतलता (या 'शिशिर' = ठंडा, उज्ज्वल)
- सः – वह (राजा) ।

भावार्थ

धर्म के लिए खर्च किए गए कोष का कृश/क्षीण होना भी राजा के लिए शोभनीय (प्रशंसनीय) है – जैसे शरद् ऋतु का उज्ज्वल आकाश (सुरैः पूतस्य) अत्यन्त शोभायमान होता है, वैसे ही धर्मार्थ-व्यय से क्षीण कोष भी पवित्र एवं गौरवशाली होता है। अर्थ का उचित सदुपयोग ही परम-धर्म है।

दार्शनिक विवेचन

यह 'धन-त्याग' (Sacrifice of wealth) का सिद्धान्त है – धर्म के लिए किया गया व्यय (यज्ञ, दान, प्रजा-रक्षा) कोष को क्षीण करता है, परन्तु वह क्षीणता 'शोभते' (प्रशंसा-पात्र) है। यह गीता के 'त्याग' (निष्काम-कर्म) एवं 'यज्ञ-भाव' से मेल खाता है – धन का सार्थक उपयोग ही पूँजी का वास्तविक फल है।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'CSR' (Corporate Social Responsibility) एवं 'कल्याणकारी-सब्सिडी' – यदि कोई सरकार/कम्पनी जन-कल्याण (धर्म) पर खर्च करके अपना बजट क्षीण (क्षीणकोष) कर ले, तो वह शोभनीय (प्रशंसनीय) माना जाता है। उदाहरण – कोविड-राहत, आपदा-सहायता – यही 'सामाजिक-प्रतिष्ठा' (शरद्वत्-शोभा) है।

श्लोक ८९ (बृहस्पति-नीति – अविगान, अविगूहन एवं विद्वत्-पालन)

श्लोक

बृहस्पतेरविगानादिति शास्त्रार्थनिचयः ।
अविगूहस्तथा च स्याद्यथा च विदितादरः ॥८९॥

IAST

Bṛhaspateravigānāditi śāstrārthanicayaḥ |
Avigūhastathā ca syādyathā ca viditādaraḥ ||89||

शब्दार्थ

- बृहस्पतेः – बृहस्पति (देवगुरु/नीति-शास्त्र-प्रणेता)
- अविगानात् – अविगान = अव + विगान (विगान = अवज्ञा/तिरस्कार) – अर्थात् 'न अवज्ञा करना' – उसकी उपेक्षा न करना
- इति – इस प्रकार
- शास्त्रार्थनिचयः – शास्त्रों के अर्थों का निचय/संचय (निष्कर्ष)
- अविगूहः – अविगूह = गोपन/छिपाव न करना (पारदर्शिता)
- तथा – तथा
- स्यात् – हो
- यथा – जैसे
- विदितादरः – विदित (ज्ञात/विद्वान्) का आदर करने वाला ।

भावार्थ

बृहस्पति (नीति-ग्रन्थों के आचार्य) की अवज्ञा (अविगान) न करना – यही समस्त शास्त्र-अर्थों का सार (निचयः) है। राजा को पारदर्शिता (अविगूह – गोपन-त्याग) तथा विद्वानों (विदित) का आदर (आदर) करना चाहिए – इसी प्रकार (यथा) उसका आचरण (स्यात्) होना चाहिए। नीति-शास्त्र की अवहेलना एवं गोपनीयता राजा के पतन का मार्ग है।

दार्शनिक विवेचन

'बृहस्पतेः' – यहाँ बृहस्पति 'अर्थशास्त्र' एवं 'नीति' के आदि-गुरु माने गए हैं। 'अविगान' – उनके वचनों का तिरस्कार न करना। 'अविगूह' – गोपन न करना अर्थात् 'सुशासन-पारदर्शिता' (Transparency in Governance)। 'विदितादर' – विद्वानों/सलाहकारों का सम्मान – यह 'मन्त्रि-परिषद्' की महत्ता को दर्शाता है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक 'सुशासन' (Good Governance) के दो स्तम्भ – (१) नीति-शास्त्र/विधि का पालन (बृहस्पति-अविगान), (२) पारदर्शिता (अविगूह), (३) विशेषज्ञों/न्यायाधीशों/विद्वानों का आदर (विदितादर) – ये तीनों ही किसी भी संगठन/सरकार को विश्वसनीय बनाते हैं। यही 'ई-गवर्नेंस' एवं 'ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल' का प्राचीन आधार है।

श्लोक ९० (विमर्श-पश्चात् सद्गुण-नियोग एवं विगुण-त्याग – समापन)

श्लोक

विमृश्यैतान् विचरस्तान् विगुणांस्तु विसर्जयेत् ।
यस्मिन्वीर्यं समायाति विभूतेः पदमेव सः ॥९०॥

IAST

Vimṛśyaitān vicarastān viguṇāṃstu visarjayet |
Yasminvīryaṃ samāyāti vibhūteḥ padameva saḥ ||90||

शब्दार्थ

- विमृश्य – विमर्श/विचार-विनिमय करके
- एतान् – इन (योग्यजनों) को
- विचरस्तान् – विचर = चर/आचरण/व्यवहार – (अर्थात् 'श्रेष्ठ-आचरण वालों को')
- विगुणान् – विगुण (गुण-रहित/अयोग्य) लोगों को
- विसर्जयेत् – त्याग/अलग कर दे
- यस्मिन् – जिस (व्यक्ति) में
- वीर्यम् – वीर्य/पराक्रम/शक्ति/गुण-सामर्थ्य
- समायाति – समायात/आती/स्थित होती है
- विभूतेः – विभूति/ऐश्वर्य/समृद्धि/पद
- पदम् – पद/स्थान
- सः – वह (व्यक्ति) ही
- एव – निश्चय ही ।

भावार्थ

राजा/शासक को (उचित) विमर्श (विचार-विनिमय) करके श्रेष्ठ-आचरण वालों (विचरस्तान्) को नियुक्त करना चाहिए, तथा विगुण (गुण-रहित/अयोग्य) लोगों को हटा देना (विसर्जयेत्) चाहिए। जिस व्यक्ति में वीर्य (सामर्थ्य/शक्ति/प्रतिभा) स्थित है, वही समृद्धि/पद (विभूतेः पदम्) प्राप्त करने का अधिकारी है – **यही सम्पूर्ण १७वें श्लोक से आरम्भ हुए 'अनुजीवी-योग्यता' खंड का अन्तिम निष्कर्ष है।**

दार्शनिक विवेचन

यह सम्पूर्ण पञ्चम सर्ग का **महानिष्कर्ष** (Grand Conclusion) है – 'विमृश्य' (आलोचनात्मक-विवेक), 'विचरस्तान्' (सदाचारी-नियोग), 'विगुणान् विसर्जयेत्' (अयोग्य-निष्कासन), एवं 'वीर्यम्' (सच्ची-क्षमता) – ये चार सूत्र समस्त सेवक-चयन/शासन-प्रणाली का सार हैं। 'विभूतेः पदम्' – पद एवं समृद्धि उसी को मिलती है, जिसमें स्वाभाविक-सामर्थ्य (वीर्य) हो – यह 'योग्यतावाद' (Meritocracy) का शिखर-सिद्धान्त है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक संगठनों/सरकारों की 'भर्ती-नीति' (Recruitment Policy) एवं 'परफॉर्मेंस अप्रैसल' – 'विमृश्य' (Interview/Assessment), 'विचरस्तान्' (High Performers) को रखना (Retain), 'विगुणान्' (Low Performers/Toxic) को हटाना (Fire/PIP), एवं 'वीर्यम्' (Merit/Skill) को ही पदोन्नति का आधार बनाना – यही आधुनिक 'HR मैनेजमेंट' एवं 'लीडरशिप' का शाश्वत सूत्र है।

श्लोक ९२ (आदर्श राजा के गुण – सम्पूर्ण सर्ग का सार-निष्कर्ष)

श्लोक

अनुगतपरितोषितानुजीवः
मधुरवचाः श्रितानुरक्तनयः ।

सुनिपुणपरमप्रसन्नतनूः
भवति नृपः सुचिरं प्रदीप्तरश्मिः ॥९२॥

IAST

Anugataparitoṣitānujīvaḥ
Madhuravacāḥ śritānuraktanayaḥ |
Sunipuṇaparamaprasannatanūḥ
Bhavati nṛpaḥ suciraṃ pradīptaraśmiḥ ||92||

शब्दार्थ

- अनुगत – अनुसरण किया हुआ (सदाचार/नीति का)
- परितोषित – संतुष्ट किये हुए
- अनुजीवः – अनुजीवी/आश्रित/सेवक/प्रजा (जिसने)
- मधुरवचाः – मधुर वचन/वाणी वाला
- श्रितानुरक्तनयः – आश्रितों (श्रित) में अनुरक्त (अनुरक्त) तथा उत्तम नीति (नय) वाला
- सुनिपुण – अत्यन्त कुशल/दक्ष
- परमप्रसन्नतनूः – परम (अति) प्रसन्न मन-शरीर (तनूः) वाला
- भवति – होता है
- नृपः – राजा
- सुचिरम् – बहुत दीर्घकाल तक
- प्रदीप्तरश्मिः – प्रदीप्त (तेजोमय) किरणों वाला (आभा/प्रतिष्ठा) ।

भावार्थ

जिस राजा ने अपने अनुजीवियों (सेवकों/प्रजा) का अनुगमन (सही मार्ग-दर्शन) एवं परितोष (संतुष्टि) किया हो, जो मधुर-वचन, आश्रितों में अनुरक्त, श्रेष्ठ-नीति-धारी, अत्यन्त कुशल तथा अत्यन्त प्रसन्न-मन-शरीर वाला हो – वह राजा सुचिरकाल तक प्रदीप्त-रश्मि (देदीप्यमान तेज/कीर्ति) से चमकता है। **यही इस सम्पूर्ण 'स्वाम्यनुजीविवृत्तप्रकरणम्' का सार-निष्कर्ष है – शासक वही सफल होता है, जो प्रजा-हित में अनुरक्त, कुशल एवं सदा प्रसन्न रहता है।**

दार्शनिक विवेचन

यह सर्ग का 'फलश्रुति' (फल-कथन) एवं 'उपसंहार' (निष्कर्ष) है। छः गुण – (१) अनुजीवी-संतोष, (२) मधुर-वाणी, (३) आश्रित-अनुराग, (४) उत्तम-नीति, (५) कौशल, (६) प्रसन्नता – इनका समन्वय ही 'आदर्श-शासक' है। 'प्रदीप्तरश्मिः' – सूर्य के समान अजर-अमर कीर्ति – यह 'राजर्षि' (राजा+ऋषि) परम्परा की पराकाष्ठा है, जो भगवद्गीता के 'लोकसंग्रह' (जन-कल्याण) सिद्धान्त से मेल खाती है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक 'लीडरशिप-मॉडल' – जो नेता (राजा) अपनी टीम/कर्मचारियों (अनुजीवी) को संतुष्ट (परितोषित) रखता है, स्पष्ट एवं प्रेरक संवाद (मधुरवचाः) करता है, ग्राहक/कर्मचारी-अनुराग (श्रितानुरक्त) रखता है, चतुर-नीति (सुनिपुण) एवं सकारात्मक-ऊर्जा (प्रसन्नतनूः) से युक्त होता है – वही 'विज़नरी लीडर' (प्रदीप्तरश्मिः) बनकर संगठन/राष्ट्र को दीर्घकालीन सफलता (सुचिरम्) प्रदान करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

सारांशतः प्रस्तुत श्लोक से चार महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, जो न केवल प्राचीन राजनैतिक चिन्तन के मूलाधार हैं, अपितु आधुनिक प्रशासन, नेतृत्व तथा प्रबन्धन के क्षेत्र में भी समान रूप से प्रासंगिक एवं शाश्वत सिद्ध होते हैं।

प्रथम, शासन की वास्तविक सफलता शासक के पद, शक्ति अथवा ऐश्वर्य में नहीं, बल्कि **अनुजीवियों (प्रजा, मन्त्रियों एवं आश्रितों) की संतुष्टि (परितोष)** में निहित है। राजा का यथार्थ शासन-सुख तभी सार्थक होता है, जब उसकी प्रजा सुरक्षित, संतुष्ट और समृद्ध हो। यही भाव **'अनुगतपरितोषितानुजीवः'** पद में अभिव्यक्त हुआ है।

द्वितीय, प्रभावी नेतृत्व का आधार कठोर आज्ञाएँ या भय नहीं, बल्कि **मधुर वाणी (मधुरवचाः)** तथा **आश्रितों के प्रति स्नेहपूर्ण अनुराग (श्रितानुरक्तनयः)** है। कामन्दकि के अनुसार स्थायी शासन का आधार भय नहीं, अपितु विश्वास, आत्मीयता और सद्भाव है। इस प्रकार यह श्लोक भय-आधारित शासन की अपेक्षा स्नेह, सहयोग और विश्वास पर आधारित शासन-पद्धति का समर्थन करता है।

तृतीय, केवल सदाचार अथवा उदारता ही पर्याप्त नहीं है; इसके साथ **सुनिपुणता (सुनिपुणः)** अर्थात् कार्यकुशलता, दूरदर्शिता एवं नीतिपरक निर्णय-क्षमता भी अनिवार्य है। आदर्श शासक वही है, जो प्रशासन, न्याय, अर्थव्यवस्था तथा युद्धनीति—सभी क्षेत्रों में समान रूप से दक्ष एवं विवेकशील हो।

चतुर्थ एवं अन्तिम, राजा की **सदा प्रसन्नचित्त वृत्ति (परमप्रसन्नतनूः)** ही उसके तेज, प्रभाव और दीर्घकालिक यश (प्रदीप्तरश्मिः) का मूल स्रोत है। आन्तरिक शान्ति, मानसिक संतुलन एवं आत्मप्रसन्नता के अभाव में बाह्य वैभव, सम्पदा और सत्ता भी स्थायी सुख प्रदान नहीं कर सकते। प्रसन्न एवं संतुलित नेतृत्व ही समाज में सकारात्मक ऊर्जा, विश्वास और प्रेरणा का संचार करता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि **व्यावहारिक दक्षता (सुनिपुणता), वाणी की मधुरता (मधुरवचाः), प्रजावत्सलता एवं अनुराग (श्रितानुरक्तता) तथा मानसिक प्रसन्नता (परमप्रसन्नता)**—ये चारों गुण किसी भी शासक अथवा नेता के स्थायी यश, प्रभाव और लोकस्वीकार्यता के मूलाधार हैं। यही **सुशासन का शाश्वत सूत्र** है, जिसे कामन्दकि ने इस अन्तिम श्लोक के माध्यम से अत्यन्त संक्षिप्त, किन्तु गम्भीर एवं कालजयी रूप में प्रतिपादित किया है।